होशंगाबाद विज्ञान

ुरुआत	1
ड़ते फिरते पंखलगाये	3
च्चे फेल कैसे होते हैं...	9
गणित के खेल	12
भीम बैठिका की यादें	15
अनुवर्तन क्यों	19
पानी: बच्चों द्वारा जाँच	24
इतिहास पढ़ाना : एक प्रतिक्रिया	30
पाठई पाठशाला में एक दिन	32
विज्ञान शिक्षण : लड़खड़ाते...	34
सवालीराम का खत	36
काँच की कहानी	38
सवालीराम	44
हाय, मैं क्या करूँ ?	48

अँक - 25 शिक्षा व शिक्षकों से सम्बन्धित पत्रिका जनवरी, 88

सम्पादन :
हृदयकांत दीवान
राघवेन्द्र तेलंग

सहयोग :
ब्रजेशसिंह
रश्मि वालीवाल
सुब्बु
राजेश खिंदरी
बाबूलाल 'क़दम'

चित्रांकन :
राजेश यादव
कैरन

होशंगाबाद विज्ञान

होशंगाबाद और विज्ञान पढ़ाने तक ही सीमित नहीं है,
बल्कि शिक्षा में नये सोच और नवाचार का प्रतीक है ●

शुरुआत

अभी कुछ ही दिन पहले की बात है मैं अपने नानाजी के श्राद्ध के संबंध में अपने मामाजी के घर गया । स्वाभाविक्त: कई बड़े-बूढ़े वहां मोजूद थे । कुछ देर तो उनके बीच में बैठा, लेकिन जल्दी ही ऊब गया। आखिरकार मामाजी के दोनों बच्चों तुषार और शिल्पा के पास पहुंचा। जल्दी ही उनकी बातों से मेरी उबकाई दूर हो गई । कुछ ही देर में हम नीचे के कमरे में चल रहे क्रिया-कर्म से अलग छत पर बैठे थे ।

कुछ छुटपुट खेल खेलते-खेलते तुषार, शिल्पा, मैं बोर होने लगे । तो हमने छत पर ही छाँव में दरी बिछाई और बैठ गये । तुषार, शिल्पा लगातार जिद कर रहे थे कि कोई नया खेल खेलें । सामने स्कूटर के कुछ घिसे टायर और एक टूटे हुए मटके के कई सारे टुकड़ों के अलावा कुछ नहीं था ।

कभी-कभी ऐसा होता है कि सामने कचरा पड़ा हो तो कचरे में कोई न कोई नायाब चीज दीख ही जाती है । बस उस दिन ऐसा ही हुआ । शिल्पा ने टायर को सामने लाकर लिटा दिया, मैं मटके के टुकड़ों कीतोड़-फोड़ में लगा था। तुषार पूछने लगा कि मैं क्या बना रहा हूं।मुझे लगा कि वाकई में मैं कुछ बना जरूर रहा हूँ नहीं तो तुषार भला ऐसा क्यों कहता ? बस, मैं पिल पड़ा। मटके के टुकड़ों के कुछ गोल टुकड़े, कुछ चौकोर, कुछ चंद्राकार टुकड़े, कुछ अलग-अलग आकार के टुकड़े मैंने जैसे-तैसे बना ही लिए और आ बैठा दरी पर ।

टायर के गोल मुंह को देखकर मैंने उसमें गोल टुकड़ों की दो आंखें लगा दीं एक नुकीले टुकड़े से नाक और चंद्राकार टुकड़े से मुंह बना दिया । लो भैया बन गया चेहरा! चेहरे को दो मिनट तो

तुषार, शिल्पा देखते रहे। मैंने पूछा बताओ क्या है ? दोनों ने पहले तो गोल टायर देखा फिर गोल-गोल दो टुकड़े फिर एक नुकीला टुकड़ा और एक चंद्रकार टुकड़ा, अब इन सब को कुल मिलाकर देखा तो दोनों के चेहरे खिल उठे । टायर के चेहरों के भाव उन दोनों के खिले हुए चेहरे से हूबहू मेल खा रहे थे ।

मैंने एक कदम और आगे बढ़ाया । चंद्राकार टुकड़े यानी मुंह को उलटा

दिया। गोल टायर अब रो रहा था। एक टुकड़े के बदलाव से इतना फर्क आ सकता है ये देखकर तुषार, शिल्पा और खुश हो गए। बस नये खेल की खोज हो चुकी थी। अब क्या था, तुषार, शिल्पा बाकी सभी टुकड़े उठा लाये, और अपनी कल्पना की आकृति के मुताबिक टुकड़े उठाकर जमाने लगे। शिल्पा ने एक टुकड़ा उठाया उसके पीछे की ओर दो नुकीले टुकड़े लगाए और एक छोटा सा टुकड़ा लिया व उसे गोल बनाने में लग गई। बनाने के बाद उसे उस टुकड़े के सामने लगा दिया। लीजिए उसने मछली बना दी।

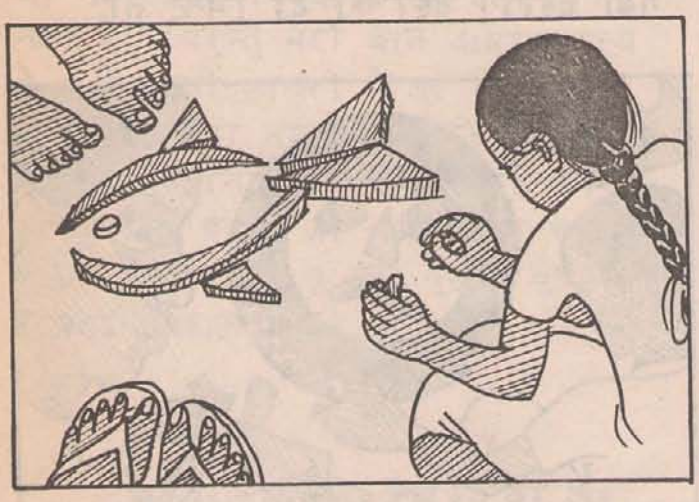

तुषार भला पीछे कैसे रहता। उसने भी अपनी कलाकारी दिखाई। दो गोल टुकड़े उठाए, उनके नीचे अलग-अलग एक बड़ा टुकड़ा लगाया और उनके दोनों ओर ऊपर नीचे दो-दो नुकीले टुकड़े लगा दिए; इसी तरह नीचे भी। एक आकृति के गोल टुकड़े में दो नुकीले छोटे-छोटे टुकड़े और दोनों आकृतियों के गोल टुकड़ों में दो-दो छोटे गोल टुकड़े और। क्या हैं ये आकृतियां ? अरे भाई तुषार, शिल्पा दोनों हैं - स्कूल जा रहे हैं !

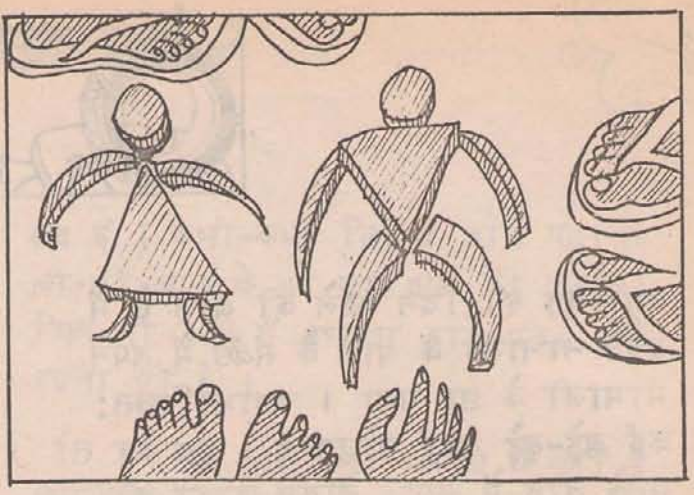

ऐसा लगा मैंने इन दोनों को सोच की एक ढलान पर लाकर खड़ा कर दिया है। नये खेल को ढूंढने का पहाड़ कितना ऊंचा लग रहा था लेकिन ऊंचाई पर आने के बाद ढलान को देखकर और तेजी से उतरने को जी चाहता है, मन करता है लुढ़कते ही जाओ लुढ़कते ही जाओ।

मैंने मटके के टुकड़े और टायर को लेकर शुरूआत की थी पर इन दोनों बच्चों ने तो टायर को छुआ तक नहीं। यानी मेरी कल्पना से अलग और कई कदम आगे छलांगे मारते हुए निकल गये थे। थोड़ी ही देर में शिल्पा और तुषार ने कई सारे टुकड़ों को मिलाकर एक बड़ा सा पेड़ बना दिया, बिल्ली बना दी, चूहा बना दिया।

इस खेल में जो मज़ा आया वो इस लेख में तो व्यक्त नहीं हो सकता (जैसे 'मज़ा' शब्द को पढ़ने पर मज़ा कभी नहीं आता)। बल्कि इस मज़े को देखने के लिए खुद बच्चों के साथ मटके के टुकड़ों से खेलें तो ही मालूम होगा।

राघवेन्द्र तेलंग

उड़ते फिरते पंख लगाए

नखलिस्तान की तलाश में घूमते हुए रेगिस्तानी काफिलों की तरह ही
हैं पौधों के ये पंखदार बीज जो पानी और नमी की खोज में
हवा के इशारों पर उड़ते हुए न जाने कहां-कहां
की खाक छानते फिरते हैं !

****

एक आदिम तलाश :

लू के एक झोंके के साथ ही खिड़की खुल जाती है, और कुछ बिन बुलाए मेहमान मेरे चारों ओर चक्कर काटने लगते हैं । हाथ बढ़ाकर उनमें से एक को पकड़ लेता हूं, तो देखता हूं सफेद बालों के गुच्छे में लिपटा पड़ा एक बीज हाथ आया है । पता नहीं कहां से चला होगा ? इसके साथी कैसे कहां पहुंचे होंगे ? मेरी आंखों के सामने बचपन के वे दिन घूम जाते हैं जब भरी दोपहरी में हम बच्चों का झुण्ड मदार के श्वेतछत्रधारी बीजों के पीछे ऐसे दौड़ता फिरता था, जैसे हमारे भी पंख लग आए हों । मेरे पंख तो अब कट चुके हैं, लेकिन मदार के ये बीज आज भी किसी उचित स्थान और नमी की तलाश में निकल पड़े हैं, अनिश्चित यात्रा पर । किसी को उचित स्थान दो सौ गज चलने पर मिलेगा, किसी को 100 गज पर ही, अधिकांश तो दूर तक उड़ते जाएंगे । अपने उगने-बसने को जगह ढूंढते ।

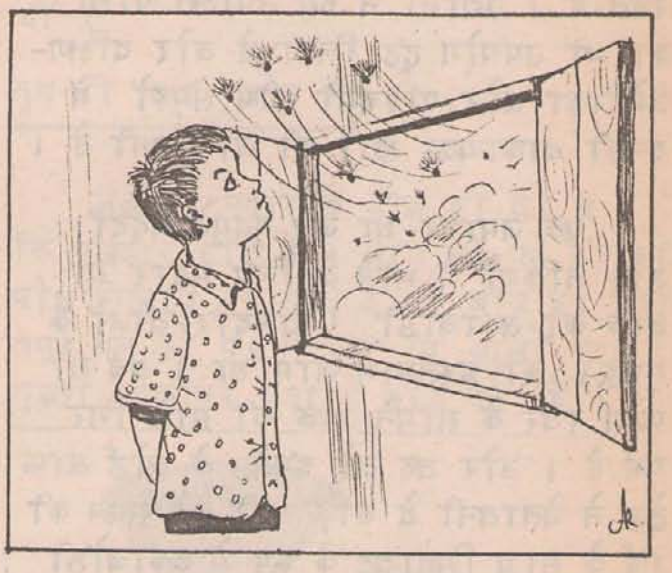

बालदार बीज ये मदार के :

मदार के ये बालदार बीजों ने ही मूल जन्म भूमि दक्षिण एशिया और अफ्रीका से निकालकर आज मदार को सार्वभौम बना दिया है । भारत में तो आप जहां चले जाएं, वहीं मदार महोदय को विराजते देख सकते हैं । न कोई इसे पानी देता है,

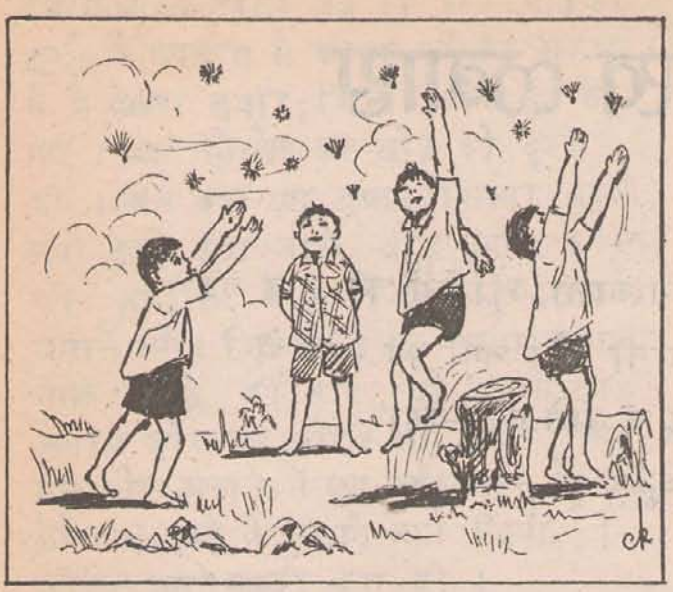

न कोई इसके बीज बोता है, फिर भी प्रकृति की गोद में ये बिना डरे पनपते रहते हैं । उद्योगों ने इस उपेक्षित पौधों का भी उपयोग ढूंढ लिया है और दक्षिण-अमेरिका और पश्चिमी द्वीप समूहों में इनकी बाकायदा खेती की जाने लगी है ।

एक जमाना था जब गुदगुदे गद्दों और तकियों में भरने के लिए मदार या आक की अकाबोंडी (बालदार बीजों के गुच्छे) का इस्तेमाल आम था । अब तो फोम रबर के सामने आक की साख गिर गई है । और वह तो इंगलैंड के बोर्ड आफ ट्रेड ने चेतावनी दे दी, नहीं तो सेमल की रूई के साथ मिलावट के रूप में अकाबोंडी की खपत होती ही रहती । सेमल की रूई तैराकों के लिए "लाइफबेल्ट" बनाने में इस्तेमाल की जाती है, जहां मदार की अकाबोंडी का होना खतरनाक है, क्योंकि पानी में भीगने पर यह भारी हो जाती है ।

लेकिन मदार की तने की छाल से जो रेशा निकाला जाता है, वह मजबूती के लिहाज से कपास से कई गुना बढ़िया होता है । तभी तो यह मछली पकड़ने के जाल, धनुष की डोरी और रस्सी बनाने के काम आता है । इस रेशे को तो साफ करके, सफेद धागे के रूप में अकेला या कपास मिलाकर बुनने के लिए भी तैयार किया जा सकता है । मगर बालदार बीजों से बनाए गए रेशे को अकेले नहीं बुना जा सकता, या तो कपास मिलानी पड़ेगी नहीं तो कोई रासायनिक उपचार करना पड़ेगा ।

<u>पट्टी पतंग जोड़ने से, चमड़ा रंगाई तक</u> :

और अब आता है मदार के हर हिस्से में मौजूद चिपचिपा दूध, जिससे हम तो पतंग जोड़ने का काम लेते थे, मगर वैज्ञानिकों ने तो इसका हर तरह से फायदा उठाने की कोशिश की है । रसायन शास्त्रियों ने मदार के दूध की जांच करके बताया है कि उसमें अन्य रसायनों के साथ-साथ एक ऐसा रसायन भी पाया जाता है जो चमड़ा रंगाई उद्योग में, खाल पर से बाल उड़ाने, दुर्गंध दूर करने तथा उसे एक पीला सा

रंग देने के लिए प्रयोग में आता है । किन्तु कृपया अपनी चमड़ी पर इस दूध को न आजमायें । जला देगा । आक के दूध के जले पर पानी छिड़कने से लेकर ग्लिसरीन, बैलाडोना लगाने जैसे उपचार करने पड़ जाते हैं ।

पीने पर भी यह दूध ज़हरीला होता है । ज़हर का मामूली असर तो दूध और चावल का मांड पिलाने से चला जाता है लेकिन तेज़ होने पर मोर्फीन और "एट्रोपीन" की शरण लेनी पड़ सकती है । 1934 में एक शोधकर्त्ता ने एक बदकिस्मत मेंढ़क को पकड़कर उसे आक के दूध का इंजेक्शन लगा दिया । बेचारे के दिल की धड़कन तो कम हुई ही, उदर और आंतों में भी सूजन आ गई ।

दमा की दवा, बारूद और मदारबटी :

एक ओर तो आक का एक ज़हरीला दूध है और दूसरी ओर है उसके बैंगनी-गुलाबी या सफेद फूलों का चूर्ण जो कफ-खांसी, ठंड और दमा तथा पेट की गड़बड़ी में दवा का काम करता है । जड़ की छाल का चूर्ण हैजे में और मरहम "हाथीपांव" में फायदेमंद है । और जब उपयोग करने पर उतारू ही हुए तो राख भी क्यों छोड़ी जाये । मदार की राख में पोटाश काफी होता है । लकड़ी जलाकर जो चारकोल बचता है, वह बारूद और आतिशबाजी का बुरादा बनाता है । तना, जड़ की छाल, फूल और पत्तियां तो दवा के काम आती ही हैं, आयुर्वेद में तो आक के दूध को कुछ अन्य औषधियों के साथ मिलाकर एक रेचक (दस्तावर) दवा भी प्रचलित है । छोटा था, तो पिताजी के औषधालय से हाजमाहजम चूरन-सी जायके-

दार और पाचक "मदारवटी" की गोलियां दोस्तों में बांटने के लिए उड़ा देता था । ये गोलियां भी आक के दूध से बनाई जाती थीं ।

तुम ही नहीं, और भी :

तब तो मदार के बीज ही देखे थे, कि पंखदार होते हैं । आज तो ऐसे हजारों पौधे गिनाए जा सकते हैं जो बीज ही नहीं, समूचे फल को पंख लगाकर या बालों का गुच्छा लटकाकर हवा में छोड़ देते हैं ।

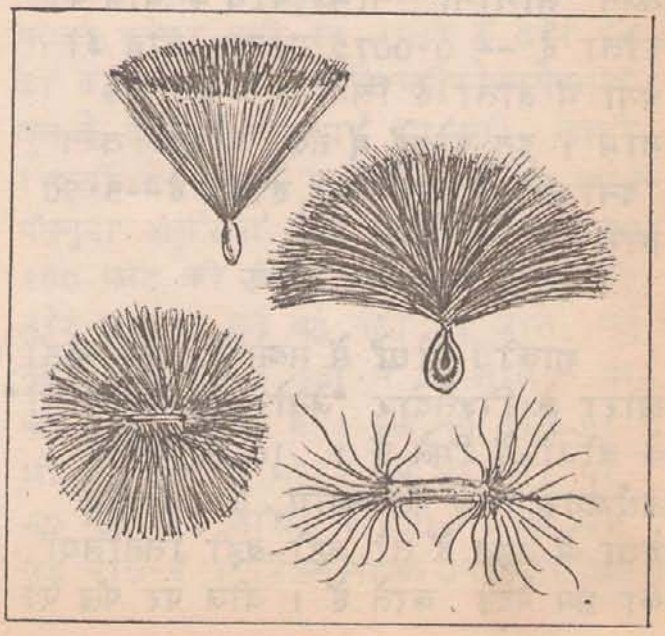

गांव, नगर, देश लांघते हुए ये पंखदार बीज-फल विश्वविजय के लिए निकल पड़ते हैं । क्योंकि ये हवा के सहारे ही उड़ते हैं, इसलिए इन्हें पूरी पृथ्वी की परिक्रमा लगाने में एक हजार वर्ष तक लग सकते हैं । "सेनेसिओ" नामक पौधे के पंखदार बीज एक वर्ष में 25 मील चलते हैं । दूसरी ओर हैं संसार के सुंदरतम पुष्पों वाले आर्किड, जिनके बीज बिल्कुल धूल सरीखे होते हैं और आंधियों के साथ-साथ हजारों मील का फासला आनन-फानन में तय कर डालते हैं । हवाई द्वीप समूहों में तीन आर्किड, इसी तरकीब से पहुंच गए हैं । एक आर्किड पर हजारों-लाखों की तादाद में बीज पैदा होते हैं । परन्तु इनमें से अधिकांश जीवन-संघर्ष की भेंट चढ़ जाते हैं ।

मुलायम बीज और नरम-नरम पंख :

आर्किडों के बीजों का वजन 0·004 ग्राम तक होता है । सेलिस्बरी नामक वनस्पतिज्ञ ने शाकीय पौधों के बीजों पर असंख्य आंकड़े एकत्र किए हैं । सबसे कम वजन "सागीना" नामक पौधे के बीज का होता है -- 0·0075 ग्राम । बीच की श्रेणी में आता है लिमोसेला--0·009 ग्राम । इन पौधों में सबसे अधिक वजन "इनीमस" के बीजों का होता है--8·90 ग्राम ।

शाकीय पौधों में सबसे बड़े पंख ककड़ी खीरा के रिश्तेदार "जेनोनिया मैक्रोकापो" के बीजों में मिले हैं । 10 सेंटीमीटर अर्धव्यास वाले पंख लगाए, जब ये बीज हवा में उड़ते हैं तो बड़ी-बड़ी तितलियों का भ्रम पैदा करते हैं । बीज पर पंख एक

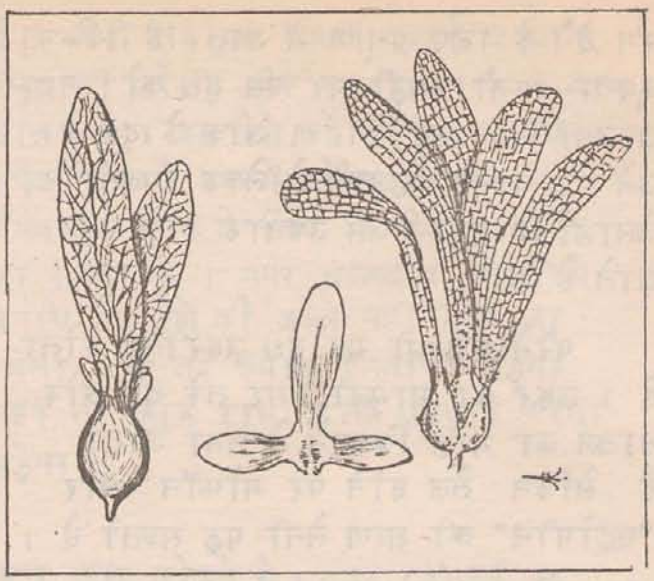

ओर हो सकता है या फिर चीड़ के बीजों की तरह दोनों सिरों पर या "जंगल जलेबी" की तरह चारों तरफ । भिन्न-भिन्न पौधों में फल, फूल और बीज के अलग-अलग हिस्से बालों या पंखों का आकार ग्रहण कर लेते हैं । कुछ रोएंदार फलों के बालों में श्लेष्मस ग्रंथियां होती हैं, जिनसे एक लिसलिसा पदार्थ निकलता है और किसी भी सतह पर फल को चिपका देता है । इसका उदाहरण है -- सूरजमुखी, गेंदा उनके अन्य साथी पौधे । बालों का पैराशूट सा बना लेने वाले बीज तो मामूली घासों में भी पाए जाते हैं । आमोरिया और स्पेबिमोसा पौधों में इस पैराशूट की शक्ल प्याले जैसी होती है ।

"हुमुलस लुपुलस" नामक पौधे का फल कागजी पत्ती के सहारे हवा में चक्कर काटता रहता है । "कोजिया" में छोटे-छोटे फूलों का हर गुच्छा चार गुलाबी पत्तियों से घिरा रहता है । पौधे से अलग होते ही ये गुच्छे बच्चों के बनाए कागज के हवाई जहाज की तरह या हवा

में फेंकी गई पत्ती की तरह घूमने लगते हैं । मलाया के "टीरोकार्पस" वृक्ष में फलों के पंख मुड़े हुए होते हैं । जमीन पर गिरने के बाद काफी देर तक ये फल लुढ़कते चले जाते हैं ।

पूरा पौधा हवाई उड़ान पर :

पूर्वी भूमध्य सागरीय प्रदेश में "एनास्टेटिका हीरोचंटिका" नाम का पौधा पाया जाता है । इसको "बेरीको का गुलाब" भी कहते हैं । बड़ी अजीब बात पाई जाती है इस पौधे में । खुश्क मौसम में जब बीज पकने लगते हैं तो पौधे की पत्तियां गिर जाती हैं और टहनियां अन्दर की ओर मुड़कर पौधे को गेंद सरीखा बना देती हैं । इस गेंदनुमा पौधे के बीच में फल सुरक्षित रहते हैं । पूरा का पूरा पौधा अब भूमि से अलग हो जाता है और उड़ने लगता है । तब तक उड़ता रहता है, जब तक किसी नमी वाले स्थान में न पहुंच जाये या बरसात का मौसम शुरू न हो जाए । अनुकूल वातावरण मिलने पर टहनियां खुल जाती हैं और अन्दर बंद पड़े फलों से बीज बिखर जाते हैं ।

ये खेतिहर पौधे :

बहुत से पौधे तो इतने कर्मठ होते हैं कि अपने बीजों को फलियों सहित खुद ही मिट्टी में दबा देते हैं । फूल निकल आने के बाद "मोरीसिमा" नामक पौधे का पुष्पदण्ड भूमि की ओर झुक जाता है । बाद में पकी हुई फलियों को, अपनी जड़ों के पास की जमीन में दबा देता है । लगभग यही क्रिया मूंगफली में भी होती है । लेकिन यहां फलियों को जमीन के भीतर ले जाने का काम मूंगफली के पौधे का मादा अंग करता है ।

मलाया से फिलीपीन पचास हजार साल तें

कुछ पौधों में फल बनने के बाद भी फूल की पंखुरियां और अंखुरियां लगी रहती हैं । अनानास में हम जिस भाग को खाते हैं, वह असल में गुद्देदार अंखुरी ही है ।

बहुत से फलों में अंखुरी कागज की तरह पतली होकर लगी रह जाती हैं और पंख का काम देती है । "डिप्टीरोकार्पेन्सी" कुल के वृक्षों में एशियाई इमारती लकड़ी मिलती है । इसके फलों में 6-6 इंच लम्बी पंखनुमा अंखुरियां लगी रहती हैं । ये वृक्ष 180 फीट की ऊंचाई तक पहुंच जाते हैं, और जब तक खूब बड़े नहीं हो जाते, फल नहीं लगते । कुछ वृक्षों में 30 साल के बाद फल लगते देखे गए हैं । पंख लगे होने पर भी इन वृक्षों के भारी फल आमतौर पर 40 गज और आंधी में 100 गज तक ही उड़ पाते हैं । रिडले नामक वनस्पतिविज्ञानी

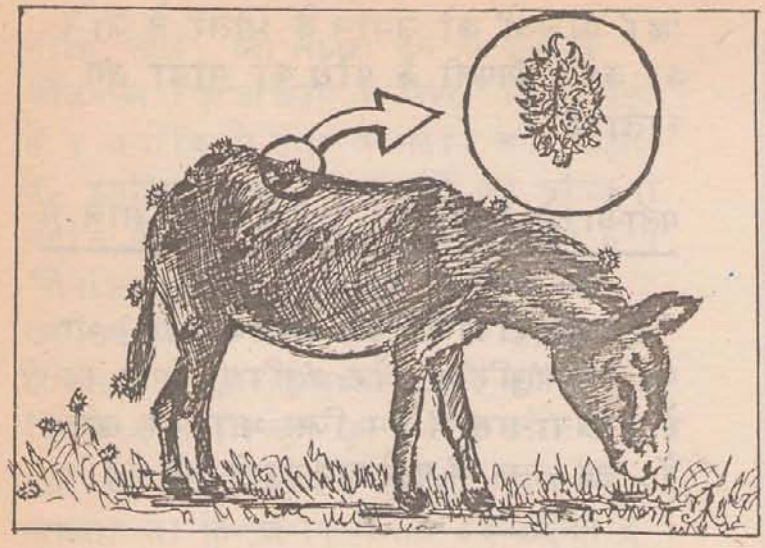

के हिसाब से इस कुल के एक वृक्ष को मलाया से फिलीपीन पहुंचने में कम से कम पचास हज़ार साल तो लगे ही होंगे ।

क्या करें, बेचारी वनस्पतियों को अपने वंश का प्रसार करने के लिए बड़ी - बड़ी तरकीबें काम में लानी पड़ती हैं । चिड़ियों के पंख, आदमी के कपड़ों और जानवरों की खाल या बालों से चिपक या उलझकर काँटेदार फल और बीज कहीं से कहीं जा पहुंचते हैं । ये अनचाहे मेहमान खेती के लिए बड़ी भारी समस्या बन जाते हैं । खेत है गेहूं का, मगर न जाने कहां कहां से आकर तमाम दुनिया के घास-पात जमा हो जाते हैं और फसल को दी गई खाद का अधिकांश हिस्सा सफाचट कर जाती हैं । किसानों ने कई तरीके सोचे हैं इन खरपतवारों को नष्ट करने के । कई रसायन भी बनाने की कोशिश की गई जो फसल को और खाने वाले को नुकसान पहुंचाए बिना इन अवांछित पौधों को नष्ट कर डालते हैं ।

दूसरी ओर आदमी ने जान हथेली पर रख कर एक पौधे के बीज दूसरे देश में पहुंचाए हैं । लगभग 30 साल पहले एशिया से चलकर "सोयाबीन" के पौधे अमेरिका पहुंचे । आज वही एशिया में वापस भेजे जा रहे हैं । उन्हीं से अमेरिका हर साल 100 करोड़ डालर कमा लेता है । कोरिया से पहुंचाए गए मुट्ठी भर "लैस्पैडेजा" के बीज, अमेरिका के खजाने में बारह करोड़ डालर प्रति वर्ष की वृद्धि कर रहे हैं ।

... मुट्ठी में बंद मदार के बालदार बीज को फूंक मार कर खिड़की के बाहर छोड़ देता हूं । खिड़की फिर बंद है । बड़ी गर्मी है । मदार के समान पंख होते तो नमी की तलाश में निकल पड़ता । यों तलाश तो बिना पंखों के भी जारी है । अनुकूल वातावरण मिला तो उगूंगा, मैं भी फलूंगा, फूलूंगा, बंद खिड़की खोल-कर, नहीं तो तोड़कर आकाश को छूलूंगा, नहीं तो ....।

रमेशदत्त शर्मा

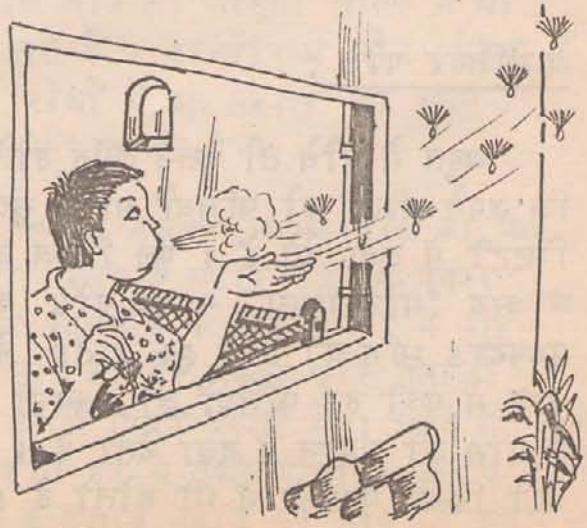

बच्चे फेल कैसे होते हैं ?: एक प्रतिक्रिया

बच्चे फेल कैसे होते हैं ? जान हॉल्ट महोदय की किताब का रश्मि पालीवाल द्वारा किया गया अनुवाद अंश रूप में पढ़ा ।

पढ़कर आपको अपने विचार लिखे बिना मन नहीं मान रहा । क्योंकि यह एक शिक्षा को समर्पित व्यक्ति की खोजपूर्ण सोच है, और हम शिक्षा के विषय में मात्र सोचते ही हैं, इस कारण ।

प्रकाशित लेख को पढ़कर "बच्चे फेल नहीं हो सकते या हमारा परीक्षाफल शत-प्रतिशत रहेगा ।"-ऐसा दावा करने वाले महान शिक्षकों का स्मरण हो आया, जो अब कुछ सेवा मुक्त हैं, कुछ स्वर्गवासी और कुछ दावे के साथ प्राथमिक शालाओं में कार्य कर रहे होंगे ।

मेरा विचार है एकलव्य वालों को ऐसे शिक्षकों से मिलना चाहिए और उनके तौर-तरीकों से अवगत हो अपनी खोज में सहायक बनाना चाहिए ।

मुझे अच्छी तरह याद आ रहा है जिस वर्ष मैं कक्षा पाँचवी का छात्र था मुझे स्व० श्री पूरललालजी शर्मा पढ़ाते थे जो मा॰शाला उमरधा में हमारी कक्षा के प्रभारी शिक्षक थे । उमरधा केन्द्र में उस समय 4 अन्य आश्रित शालाएं प्राथमिक प्रमाण पत्र परीक्षा के लिए आती थीं उस समय परीक्षा सहा॰जि॰शा॰ निरीक्षक बनखेड़ी से आकर लेते थे और 4 दिन का कैम्प कर परीक्षा फल घोषित करके ही जाते थे । परीक्षा भी अब जैसी नहीं होती थी अनुशासन में परीक्षा, परीक्षा जैसी होती थी । कोई छात्र गलत तरीकों का उपयोग न तो जानता था और न ही उसे कराया जाता था ।

धन्य हैं वे शिक्षक जिन्होंने उमरधा केन्द्र में आकर यह दावा किया था कि हमारी शाला से एक भी छात्र फेल नहीं होगा । और हुआ ऐसा ही ।

कैसा था उस समय का पाठ्यक्रम ? कैसी थी उस समय की अध्यापन पद्धति ? और कैसी थी हम छात्रों की क्षमताएं ? आज के पाठ्यक्रम, पद्धति और क्षमताओं से भिन्न नहीं । भिन्नता महसूस होती है तो सिर्फ उन दावा करने वाले शिक्षकों और आज के शिक्षकों में । यह भिन्नता क्यों है ? क्या यह ऐसे ही बढ़ती जाएगी। यह बढ़ती जाएगी तो शिक्षा का स्तर भी गिरता रहेगा । और फिर चाहे कोई पाठ्यक्रम हो, कोई नया से नया तरीका हो, चाहे कोई अत्याधुनिक सहायक सामग्री

हो शिक्षा में सुधार की संभावनाएं कम रहेंगी ।

कोई पढ़ायेगा ही नहीं तो सुधरा हुआ पाठ्यक्रम क्या करेगा । कोई उपयोग ही नहीं करेगा जो नया से नया तरीका क्या करेगा ? बात सुधार की जगह सुधार को कर्म रूप में उतारने की ज्यादा अच्छी और सफल होगी ।

ऊपर दावा करने वाले जिन शिक्षकों की बात कही गई है उनमें से गुरूता प्राप्त एक गुरूदेव का मैं भी शिष्य रह चुका हूं । इनमें ऐसी कौन सी शक्ति थी जो उनसे ऐसा दावा कराती थी-कि मेरी कक्षा का एक भी छात्र फेल नहीं होगा ? अधिक प्रश्नवाचक वाक्यों को लिखने से क्या फायदा। अंत में मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि जो शिक्षक अपने शिक्षकीय पेशे और अध्यापन कार्य जो एक कला है से रूचि रखते हैं और शिक्षा के उद्देश्य को अपने मन मस्तिष्क में रखते हुए और जो अपने कर्त्तव्य पालन को ही ईश्वर की उपासना समझते हैं उन्हों से हमें शिक्षा में सुधार और उसके उद्देश्य की प्राप्ति की आशा करना चाहिए । अन्य तो इस लिए शिक्षक हैं कि और कुछ नहीं बन पाये ।

आपको लग रहा होगा कि मैं वर्तमान शिक्षकों, शिक्षा, शिक्षा व्यवस्था, शिक्षा की रीति नीतियों की आलोचना कर रहा हूं । भाव ऐसा नहीं है । यदि हो भी तो एक मैं क्या कर सकता हूं और तो और मैं स्वयं कुंठित हो गया हूं आज की शिक्षा व्यवस्था से।अपने अल्पज्ञान और सुधारवादी विचार धारा का कुछ प्रयोग करना चाहूं तो व्यवस्था नहीं मिल पाती। ऐसी कई प्रतिभाएं होंगी हमारे शिक्षक समाज में जो कुंठित पड़ी हैं, व्यवस्था के अभाव में, शासन की शिक्षा व्यवस्था के प्रति सौतेली विचारधारा, और सहयोग के अभाव में, स्थानान्तर की राजनीति के फलस्वरूप, स्थानीय राजनेताओं की चाटु-कारिता न करने के कारण और भी कई ज्ञात-अज्ञात कारणों से उन्हें एकलव्य जैसी शिक्षा को समर्पित भावना वाली संस्था को उभारना चाहिए ।

आपको सुधार में सहयोग मिलेगा और एक सुखद परिवर्तनकारी व्यक्तियों का बहुमत तैयार हो जाऐगा ।

वो क्या बात है जो स्कूलों को "सफल और कारगर" बनाती है । इसका पता लगाने के लिए अमरीका में जो सर्वेक्षण किया उसमें 55 कारगर स्कूल मिले जिनमें 5 गुण समान रूप से कार्य करते हैं । जिनमें से जॉन हॉल्ट महोदय को 2 गुण महत्वपूर्ण लगे -

1. अगर बच्चे सीख नहीं पाते थे तो उन्हें दोष नहीं दिया जाता था, न ही उनके परिवार को, मोहल्ले को या उनकी जन्मजात क्षमताओं को दोषी ठहराया जाता था । कुल मिलाकर

इन स्कूलों में बहाना ढूंढने की कोशिश नहीं की जाती थी। बच्चे के सीख पाने या न सीख पाने की पूरी जिम्मेदारी स्कूल अपनी मानता था ।

2• जब क्लास में एक तरीके से पढ़ाया जाता और उससे बच्चे सीख नहीं पाते तो उन तरीकों को छोड़कर पढ़ाने के नये दूसरे तरीके ढूंढे जाते यानी स्कूल में पढ़ाने के असफल तरीकों को फेल किया जाता, असफल छात्रों को नहीं ।

पहले गुण में स्कूल की जिम्मेदारी विशेष बात है। स्कूल की जिम्मेदारी से अर्थ होता है शिक्षक की जिम्मेदारी । अब यह प्रश्न उठता है कि अमेरिका का शिक्षक बच्चों को सिखाना अपनी जिम्मेदारी क्यों मानता है ? कैसा है वहां का शिक्षक और कैसी हैं उसके घर और स्कूल की परिस्थितियां जो उसे उसके लिए जिम्मेदारी निवाहने में साधक हैं बाधक नहीं । यदि उसकी परिस्थितियां बाधक होतीं तो जिम्मेदारी मानने वाले स्कूल अमेरिका में हो ही नहीं सकते ।

दूसरा गुण जिसे जॉन हॉल्ट महोदय ने महत्वपूर्ण माना है और वह है पढ़ाने का तरीका। तरीका कैसा भी हो उसे कर्म रूप में उतारने वाला शिक्षक उतारता है या नहीं । अमेरिका का शिक्षक नित नये तरीकों का सिखाने में उपयोग करता है और वह तरीके खोज भी पाता है । कैसा है उसका मानसिक स्तर ? कैसी होगी उसकी शैक्षणिक, प्रशिक्षण योग्यता ? क्या हमारे भारत जैसी? आप ही सोचिएगा। आपका सोच भारतीय शिक्षक (म•प्र•) की योग्यता और उसकी चयन प्रक्रिया और खासतौर से उसके वेतनमान पर आकर समाप्त हो जायेगा । जबकि शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण पुर्जा है शिक्षक जिसमें कोई सुधार, परिवर्तन की बात नहीं करता । भारतीय शिक्षक से अमेरिका जैसी शिक्षा की आशा करना उचित नहीं । भारत में यदि शिक्षा के स्तर में सुधार की मंशा है तो शिक्षक की परिस्थितियों को सुधारना होगा ।

क्या होगा - यदि शिक्षक का वेतन हर भारतीय कर्मचारी से अधिक कर दिया जाए और शिक्षक चयन की प्रक्रिया कठोर कर दी जाए । और अधिक से अधिक विषयों के ज्ञाता को प्राथमिकता दी जाये ।

राकेश कुमार चौधरी
सहायक शिक्षक
भाट-पिपरिया

अमेरिका और भारत की परिस्थितियों की तुलना में उठाए गए आपके प्रश्न बहुत वाजिब हैं । फिर भी यह ध्यान रखिए कि जॉन होल्ट जैसे विचार अमेरिका में भी कुछ ही लोगों के मन में हैं । अमेरिका के अधिकांश शिक्षकों का दृष्टिकोण व मन: स्थिति अपने यहां के शिक्षकों से कुछ हद तक मिलती-जुलती है - तभी तो होल्ट को अमेरिका में भी यह किताब लिखने की जरूरत पड़ी । - संपादक

गणित के खेल

पता नहीं क्यों जब भी गणित के आंकड़ों के साथ कुछ जोड़-तोड़ करना होता है तो हम में से ज्यादातर लोग घबरा से जाते हैं । गणित की पहेलियों का नाम सुनते ही पसीना आने लगता है । अगर याद करने की कोशिश करें तो लगेगा कि इसकी वजह कहीं न कहीं स्कूल में बिताए सालों में छुपी हुई है । डरा-डराकर रटाए गए पहाड़े, स्थानीय मान की बातें, दशमलव के ऊट-पटांग सवाल और न जाने क्या-क्या । फिर ऐसा भी हो सकता है कि हमें अंकों के साथ खेलने का कभी मौका ही नहीं मिला हो ।

परन्तु फिर भी कुछ बच्चे अंकों के साथ खिलवाड़ करना शुरू कर ही देते हैं - अंक बूझने, तारीख से जन्मदिन बताने, गुणा-भाग के आसान तरीके ढूंढने जैसे कुछ-न-कुछ खेल खेलने लगते हैं । एक बार झिझक दूर हो जाये तो फिर गणित के पाठ्यक्रम में भी नई-नई बातें दिखाई देने लगती हैं ।

बस, सवाल यही है कि हमारी झिझक कभी टूट पाती है कि नहीं । यहां पर हम शास॰ बहु॰उ॰मा॰विद्यालय, होशंगाबाद में सातवीं में पढ़ते मोहम्मद रज़्ज़ाक की गणित के खेल बनाने की कुछ कोशिशों को प्रस्तुत कर रहे हैं ।

शीर्षक पढ़कर आपको आश्चर्य हो रहा है न । क्यों न होगा आखिर ये है ही आश्चर्यजनक बात । भला आर्क्स सारणी और वो भी गणित में !

जी हां, आज तक आपने सिर्फ ये ही सुना व पढ़ा होगा कि आर्क्स सारणी केवल रसायन शास्त्र में होती है । परन्तु हमने भी एक आर्क्स सारणी को खोजा है जो रसायन की नहीं गणित की आर्क्स सारणी है । परन्तु इसके गुण रसायन की आर्क्स सारणी के गुणों से मिलते-जुलते हैं ।

तो लीजिए हम आपकी मुलाकात करवा देते हैं गणित की आर्क्स सारणी से-

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
11	12	13	14	15	16	17	18	19	20
21	22	23	24	25	26	27	28	29	30

सारणी क्रमांक - 1

इस सारणी में दस ख़ाने बराबर दूरी पर खींचें गए हैं तथा बाईं से दाईं ओर बने ख़ानों में क्रमशः । से 10 तक के अंकों को जमाया गया है ।
नीचे पुनः ।। से 20 तक अंक इसी प्रकार आगे बढ़ते जाते हैं । इसी तरह हम नीचे तीसरी, चौथी, पांचवी··· कतार जमा सकते हैं ।

यदि सारणी को ध्यान पूर्वक देखा जाए तो ऊपर से नीचे की ओर जाने पर किसी भी खाने में आने वाली संख्या का को देखें तो इसमें एक नई विशेषता दिखाई देती है । सारणी में बायें से दायें बढ़ने पर हमें वर्गों वाले ख़ाने में इकाई के अंक इस प्रकार दिखाई देते हैं । प्रथम खाने में 1, द्वितीय खाने में 4, तथा आगे क्रमशः 9, 6, 5, 6, 9, 4, 1 और 0;आप यदि सारणी क्रमांक 2 को आगे बढ़ायें,तो आप पाएंगे की सारणी के किसी खाने में रखी वर्ग वाली संख्या को आधार मानकर जब दायें से बायें या बायें से दायें गिनते हैं तो दसवें ख़ाने में जो वर्ग वाली संख्या प्राप्त

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
1	4	9	16	25	36	49	64	81	100	121	144

सारणी क्रमांक - 2

इकाई का अंक ठीक उसके नीचे आने वाले खानों में रखे अंकों के इकाई के अंक से मिलता है । उदाहरणार्थ यदि 2 वाले खाने को लें तो ऊपर से नीचे आने पर हमें क्रमशः 12, 22, 32, ··· आदि संख्याएं प्राप्त होती हैं जिनमें इकाई का अंक 2 है ।

अब यदि हम सारणी क्रमांक-1 में जमी संख्याओं को इसी क्रम में रखते हुए उनके वर्ग करें तो हमें एक विशेष बात दिखाई देगी ।

सारणी क्रमांक 2 में ऊपर वाला खाना संख्याओं का है तथा उसके ठीक नीचे वाले खाने में उसी संख्या का वर्ग है जैसे 2 का 4, 5 का 25, ····· अब हम सारणी-2 होगी उसे उस वर्ग वाली संख्या से मिलाईए जिसे आधार मान कर आपने गिनना शुरू किया था तो आप पाएंगे कि इनके इकाई के अंक मिलते हैं । यदि इन वर्गों का वर्ग-मूल लिया जाए तो उन संख्याओं के भी इकाई के अंक मिलते हैं । कहो है न आश्चर्य-जनक बात ?

अब सारणी क्रमांक 1 को इस प्रकार जमाईये जैसे सारणी क्रमांक 3 में दर्शाया गया है ।

इस सारणी में हर मूल ख़ाने को दो हिस्सों में बांटा गया है । दाईं ओर के हिस्से को उपखाना कहा गया है और

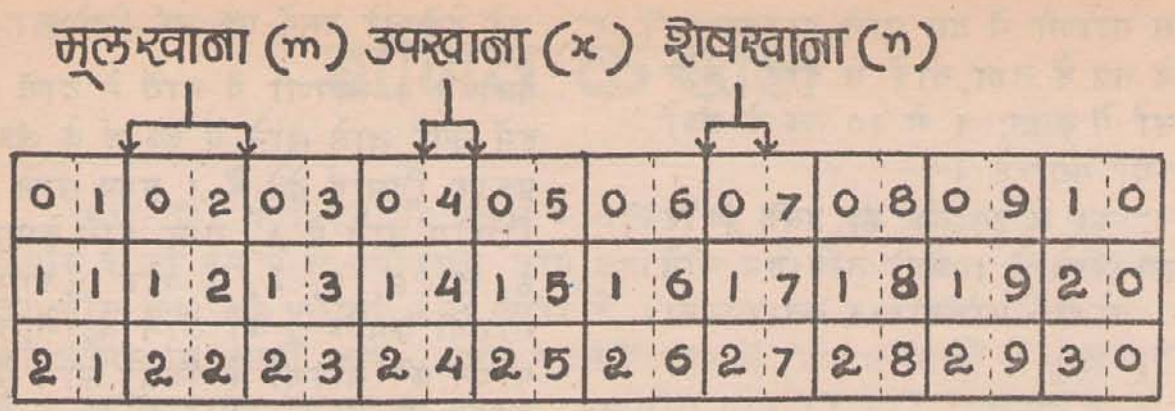

सारणी क्रमांक - 3

दाईं ओर के हिस्से को **शेष खाना** कहा गया है । उपखानों में केवल मूल खानों में रखी संख्या के इकाई के अंक ही आते हैं । इकाई का अंक छोड़ सभी अंक शेष खाने में आते हैं । सारणी के अनुसार संख्याओं के अंकों को इस प्रकार नामांकित किया गया है ।

मूल खाने में रखी संख्या = **m**
उपखाने में रखा इकाई का अंक = **x**
शेष खाने में बचे अंक = **n**

अब आप कोई भी मन चाही संख्या चुन लीजिए तथा उसे क्रमशः **m , n** तथा **x** में विभाजित कर दीजिए । इस संख्या का वर्ग निकालने का एक बहुत ही आसान तरीका है :

1. पहले $(m+x)\times n$ निकाल लीजिए
2. इस प्रकार से मिली संख्या के आगे शून्य (0) रख दीजिए
3. उसमें x^2 जोड़िये

जो अंक आपको मिलेगा वह चुनी हुई संख्या का वर्ग होगा । अब एक उदाहरण लेकर देखते हैं।

यदि संख्या 12 है तो -

$m=12$, $n=1$, $x=2$

$(m+x)\times n = (12+2)\times 1 = 14$

14 के बाद शून्य लगाने पर 140

अब $140+x^2 = 140+2^2 = 140+4$
$= 144$

इसलिए $12^2 = 144$

और यदि संख्या 53 हो तो -

$m=53$, $n=5$, $x=3$

$(m+x)\times n = (53+3)\times 5 = 56\times 5$
$= 280$

280 के बाद शून्य लगाने पर 2800

अब $2800+x^2 = 2800+3^2 = 2800+9$
$= 2809$

मोहम्मद रज़्ज़ाक

भीमबैठिका की यादें

कल ही भीम बैठिका गया । और काफी लोग साथ थे । पहुंचे तो पहले खुद ही घुस गये अन्दर जैसे कोई खोज कर रहे हों । यहां कहते हैं कि आदिमानव निवास करते थे । उनकी गुफाएं थीं यहां । यहां की चट्टानों पर उन्होंने चित्र बनाए । इन्हीं चित्रों से अनुमान लगाए गए कि कैसा जीवन रहा होगा, वे लोग क्या करते रहे होंगे, उनके क्या विश्वास-आस्थाएं रही होंगी, इत्यादि । उनके बनाए औजार यहां मिलते हैं । अनुमान है कि यहां 1,00,000 वर्ष पूर्व से लेकर 1500 वर्ष पूर्व तक मानव का निवास रहा । अलग-अलग समय के औजार चित्र, बर्तन यहां मिले हैं ।

जब हम घुस गये तो उन विस्तृत चट्टानों पर ध्यान गया । उनके कटानों पर ध्यान गया । वे चट्टानें वास्तव में दैत्याकार हैं । इन सबको देखकर मन में कुछ अजीब सा होने लगा । पर साथ में यह भी लगता रहा कि यह 'अजीब सा' सिर्फ इन चट्टानों के आकार और विस्तार के कारण नहीं हो रहा है । कहीं मन में, अचेतन में, यह था कि किसी समय इन्सान इन्हीं रास्तों पर सधे कदमों से चलते होंगे । चित्रों को देखकर लगता था कि किसी ने कूची उठायी होगी, रंग लिया होगा, कल्पना की होगी और फिर वे सधे हुए हाथ चले होंगे और हजारों साल पहले यह चित्र चट्टान पर उतरा होगा । उसे आज हाथ लगाना, उस

चट्टान के नीचे बैठना या लेट जाना कितना अजीब अहसास है । हम मजाक में कहते भी थे कि यह उनका बेडरूम रहा होगा । कितना सार्थक है यह सोचना कि एक लाख साल पहले इन्सान यहाँ अपने दोनों कदमों से चले, अपने नवदक्ष हाथों से उन्होंने काम किया ।

धीरे-धीरे हमारा ध्यान पत्थर के औजार ढूंढने की तरफ गया । छोटे-छोटे माइक्रोलिथ और उनसे भी पहले के बड़े-बड़े औजार मिले हमें । पहले तो मेरे लिए यह एक मज़ेदार गतिविधि मात्र रही। पहचानने की कोशिश की कि कौनसा पत्थर का टुकड़ा "औजार" है और कौन सा नहीं । माइक्रोलिथ ज्यादा आसानी से पहचाने जाते हैं । किसी ने बताया कि वैज्ञानिकों ने यह भी अनुमान लगाया है कि ये कैसे बनाये जाते होंगे । पत्थर के बड़े औजार तो एक पत्थर से दूसरे पत्थर को तोड़कर बनाये गए- सीधी चोट द्वारा । परन्तु माइक्रोलिथ बनाने के लिए पत्थर पर किसी नुकीली चीज से दबाव डाला जाता था- हाथों को छाती से दबाकर । इससे पतली-पतली चिप्स निकल आती थीं । ये बाद में औजार तैयार करने के काम आती थीं ।

वे हिस्से भी मिले जिनमें से ये चिप्स निकाली गयी थीं । इन्हें वैज्ञानिक "कोर" कहते हैं । ये सब कितना जोड़ने वाला लगता है । मैं जुड़ रहा था उस सबसे । कई प्रश्न मन में उठ रहे थे ।

एक औजार हाथ में था । लगा कि मेरे हाथ में अभी जो औजार है उसे कई हजारों वर्ष पहले किसी और इन्सान ने किसी उद्देश्य से पकड़ा होगा । पकड़ने से पहले बनाया होगा । बनाने से पहले

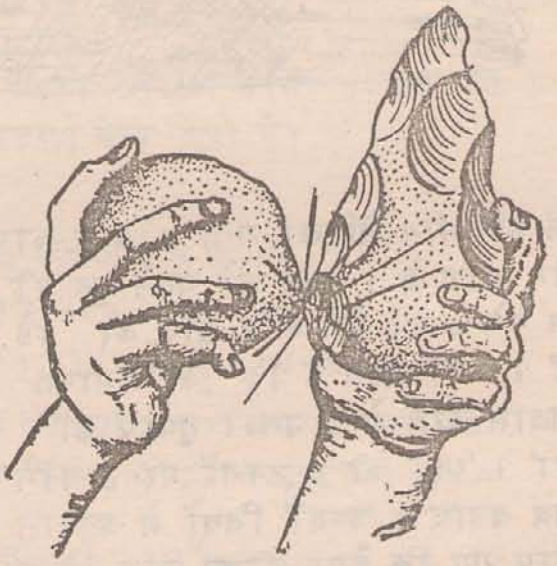

कल्पना की होगी । मुझे बहुत अच्छा लगा । कोशिश करने लगा कि जान पाऊं कि कैसे उस व्यक्ति ने इसे पकड़ा होगा, क्या किया होगा इससे, क्या सोचा होगा उस समय ? सबसे पहला औजार बनाने की कल्पना कहाँ से आई होगी ? किस दिन, किस तारीख को बना होगा सबसे पहला पत्थर का औजार ? कोई भी कहेगा कि कितना मूर्खतापूर्ण सवाल है । जब पूरी मानव-जाति की कल्पना शक्ति लगी होगी औजार बनाने में तब यह क्यों इतना

महत्वपूर्ण है कि पहला किसने बनाया । यह तो मात्र संयोग की बात है कि अमुक ने पहला औजार बना दिया । हूं ना में बेवकूफ । पर फिर मुझे लगा कि इतना बेवकूफ भी नहीं हूं मैं ! आखिर हमारे लिए यह बात कितनी ज्यादा महत्वपूर्ण है कि पहला बल्ब एडिसन ने बनाया । यदि कोई गलत बता दे तो मूर्ख कहा जाएगा । फिर ऐसा प्रश्न मेरे मन में उठना तो स्वाभाविक है कि पत्थर का पहला औजार किसने बनाया । आप कहेंगे कि शायद उस समय नाम ही न होते हों । हम नाम के भी कितने आदी हैं !

जिस तरह १९ वीं शताब्दी के संदर्भ में बिजली का बल्ब बनाना एक बड़ी वैज्ञानिक खोज थी । वैसे ही आदिकाल के संदर्भ में माइक्रोलिथ बनाने की खोज करना एक बड़ी वैज्ञानिक खोज थी । हम भले ही महसूस करें कि हम विज्ञान के युग में रह रहे हैं, पर आदिकाल को अविज्ञान का युग या विज्ञान रहित युग कहना हमारी नासमझी का ही परिचय देगा, और क्या ?

"वैज्ञानिक" क्या है, इस प्रश्न को टटोलते-टटोलते मेरे मन में एक और बात उभरने लगी । सोचने लगा कि जब माइक्रो-लिथ बनाने का तरीका किसी ने खोज लिया था, तब क्या पत्थर के बड़े औजार अवैज्ञानिक हो गए ? आखिर माइक्रोलिथ की कार्यक्षमता बड़े औजारों से बेहतर थी । मुझे महसूस हुआ कि जरूर माइक्रोलिथ हाथ में लेकर मानव ने दूसरों से कहा होगा कि तुम पुराने लोग अभी तक इन बड़े- बड़े अवैज्ञानिक औजारों का इस्तेमाल करते हो। शायद ये शब्द न प्रयोग किए हों ।

लेकिन नहीं शायद नहीं कहा हो । यह तो मैं हूं जिसे ऐसा सोचने की आदत हो गई है । आज का माहौल ही ऐसा है । आखिर हम तो कहते ही हैं ना कि हमारे देश में आज तक लोग अवैज्ञानिक तरीके से खेती करते हैं जबकि ज्यादा वैज्ञानिक तरीके उपलब्ध हैं !

पर कैसे हो गए वो पुराने तरीके अवैज्ञानिक ? हम भी अजीब हैं ! ये नहीं सोचते कि जिन परिस्थितियों में उन तरीकों को खोजा गया था, उपयोग किया गया था , उस संदर्भ में तो वो वैज्ञानिक ही थे ।

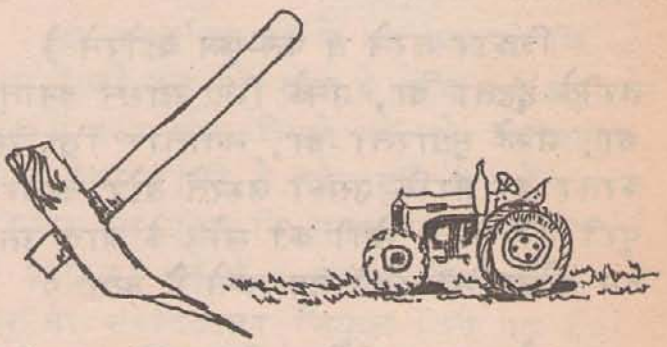

माइक्रोलिथ औजारों में कार्यक्षमता बेहतर हो सकती है, पर उनसे भी पहले के समय में जिन परिस्थितियों में पत्थर के बड़े औजार बनाने की खोज की गई थी, वह खोज उस संदर्भ में "वैज्ञानिक कैसे नहीं मानी जाए ?
आखिर एक संदर्भ में एक ही प्रकार की खोज हो सकती है ।

आज खेती में पुराने तरीकों की बजाए वैज्ञानिक तरीके इस्तेमाल करने की बात हम कहते हैं पर आप उस स्थिति के संदर्भ में सोचिए जब खेती पहली-पहली बार कहीं शुरू हुई होगी । उस समय तो खेती का वही एकमात्र तरीका था जो कहा जा सकता है कि पहले के जीवन साधन के तरीकों से ज्यादा वैज्ञानिक था ।

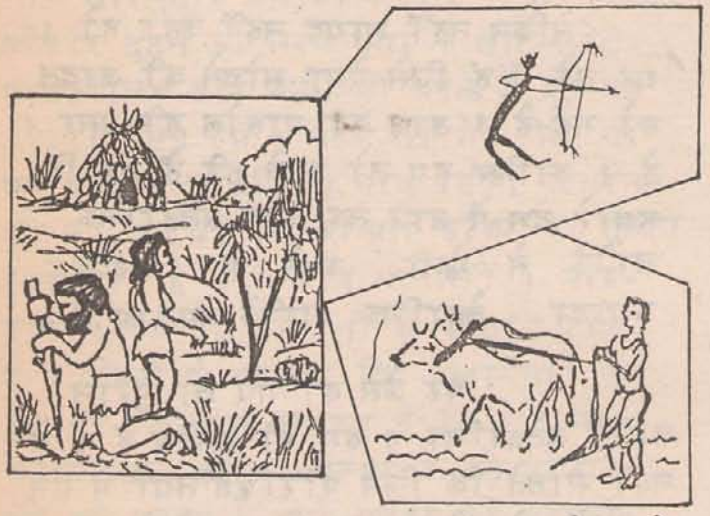

फिर, उससे पहले भी इन्सान अपनी परिस्थिति के अनुरूप कुछ तो करता था ।

शिकार करने व फल-फूल बटोरने के तरीके ढूंढता था, उनके लिए साधन बनाता था, उन्हें सुधारता था, लगातार विकसित करता था ताकि उसकी जरूरतें और बेहतर पूरी हो सकें । खेती की खोज के बाद उसे हम अवैज्ञानिक कहने लग सकते हैं क्या ?

और मान लीजिए कि कहीं एक नई खोज हुई है । जो पुरानी खोजों से बेहतर है । पर अगर किसी जगह के लोगों की परिस्थितियां उस खोज के अनुकूल नहीं हैं और लोग पुराने तरीकों को ही अपनाए हुए हैं तो उनका व्यवहार "वैज्ञानिक" हुआ या नहीं ? उनके पुराने तरीके उनके संदर्भ में "वैज्ञानिक" रहे या अवैज्ञानिक हो गए ?

मैं अब धीरे-धीरे परेशान होने लगा । मुझे समझ ही नहीं पड़ रहा था कि आगे क्या सोचूं । किसे वैज्ञानिक कहा जाए-पुराने औजारों को या माइक्रोलिथ को ? धीरे-धीरे कुछ समझ में आया, कुछ छूट गया । एक तो बात लगी कि विज्ञान या वैज्ञानिक की परिभाषा एक संदर्भ में ही होती है । पर उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण दूसरी बात समझ में आयी । कोई विशेष खोज या अविष्कार अपने आप में वैज्ञानिक या अवैज्ञानिक नहीं होता । वैज्ञानिक प्रक्रिया वह होती है जिसमें वह खोज या अविष्कार संभव होता है । जिसमें अपने-आप ऐसी खोजें होती चलती हैं, या जिसका अवश्यंभावी परिणाम ही यह होता है । यह ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक जगह को मंजिल नहीं मानते । हर मंजिल पड़ाव ही रह जाता है ।

अर्थात यदि पत्थर के औजार बनाने के बाद इन्सान थम जाते तो वैज्ञानिक प्रक्रिया अधूरी रह जाती । इस प्रक्रिया को समझना ही शायद विज्ञान है । यह निर्भर है दो संबंधित बातों पर - इन्सान की कल्पना शक्ति और उस कल्पना को अपने हाथों से साकार करने की क्षमता पर । ये दोनों आपस में एक दूसरे को बढ़ावा देती हैं ।

इस संदर्भ में प्रश्न उठ रहा है कि क्या हमें आज मौजूद तथा कथित अवैज्ञानिक अंधविश्वासों को इस नजरिए से आंकने की जरूरत नहीं है कि वे किस परिस्थिति में बनें और किस संदर्भ में माने जाते रहे ? आपको क्या लगता है ?

सुशील जोशी

अनुवर्त्तन क्यों ?

अनुवर्त्तन का क्या लाभ हो रहा है ? इसकी उपयोगिता क्या है ? अब तक प्राप्त अनुवर्त्तन प्रतिवेदनों को देखने से कहीं ऐसा नहीं लग रहा है कि बच्चों/शिक्षकों को अनुवर्त्तनकर्त्ता कुछ लाभ दे पा रहे हैं । अनुवर्त्तन प्रतिवेदन में मात्र एक झलक मिलती है कि किस शाला में कौन शिक्षक क्या पढ़ा चुका है शेष बच्चों का स्तर सामान्य है, शिक्षक की कोई कठिनाई नहीं है कापियां जांची गई हैं आदि-आदि ।

अनुवर्त्तन-कर्त्ताओं ने कहा कि सबकी समझ अनुवर्त्तन के प्रति अलग है । कुछ मा॰ शा॰ में अनुवर्त्तन-कर्त्ता पहुंचे तो बड़े गुरूजी या शिक्षक स्वयं ही अनुवर्त्तन-कर्त्ता का "अरेंजमेंट" लगा देते हैं और अनुवर्त्तन-कर्त्ता से कक्षा में विज्ञान पढ़वा लिया जाता है। अक्सर ऐसा ही होता है । कहीं एकाध जगह संयोग से कक्षा प्रयोग करती मिल जाती है तब ही अनुवर्त्तन-कर्त्ता कुछ सहयोग कर पाते हैं । वर्ष में एक-दो प्रतिवेदन ही ऐसी जानकारी देते हैं । अनुवर्त्तन-कर्त्ताओं ने ही बताया कि अभी भी विज्ञान शिक्षक ऐसे मिलते हैं, जो थर्मा-मीटर सही ढंग से पकड़ना नहीं जानते, यह नहीं जानते कि नपनाघटों का न्यूनतम नाप अलग-अलग हो सकता है । बच्चे भी इसी अवधारणा का परिचय देते हैं-हर नपनाघट का न्यूनतम नाप बिना हिसाब लगाए, बिना देखे, झट कह देते हैं - "एक मि॰ली॰" है ।

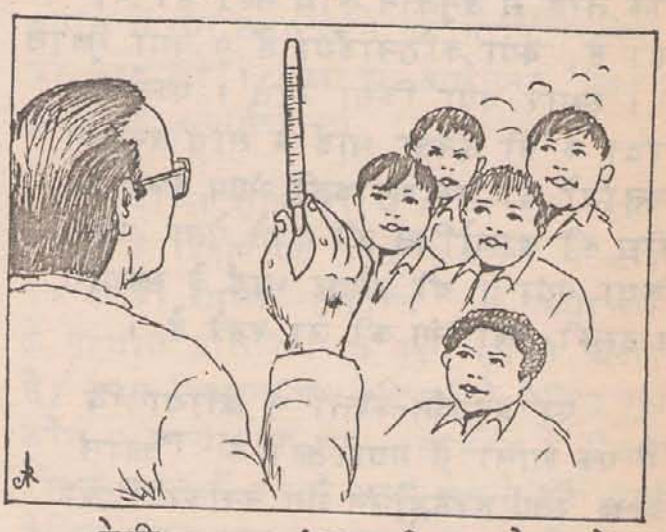

ऐसी समस्याएं तब ही सामने आयेंगी जब स्वयं अनुवर्त्तनकर्त्ता कक्षा में सवाल खड़े करेंगे । शाला का समय-विभाग-चक्र ध्यान में रखकर शाला में पहुंचें तब ही बच्चों का सही अवलोकन हो सकेगा ।

एक अनुवर्त्तनकर्त्ता ने यह बताया कि कक्षा में जो कुछ हो रहा है यदि हम अनुवर्त्तन में पूरा-पूरा लिखने लगें तो व्यक्तिगत बुराई पैदा होती है और हुई भी है । परिणाम यह हुआ कि नमस्कार-चमत्कार तक बन्द हो चुके हैं । गतवर्ष संगमकेन्द्र स्तर पर संवाददाता नियुक्त किए गए । क्षेत्रीय समस्यायें एकत्रित कीं, पर आज भी प्रशिक्षित विज्ञान शिक्षक प्राथमिक शाला में है। किसी शाला में आवश्यकता से अधिक शिक्षक हैं तो किसी में आवश्यकता से कम, पर विभाग को इस पत्रकारिता से क्या असर होना था । बल्कि उल्टा हुआ, पत्रकार ही नज़रों में खटकने लगे ।

अनुवर्तन कार्य को सही ढंग से क्रियान्वित करने के लिए एक बार पुनः संगम केन्द्र स्तर पर विचार गोष्ठी आयोजित की जाना चाहिए जिसमें इस बात का पता लगाया जावे कि किन कारकों से ठीक तरह से अनुवर्तन कार्य नहीं हो पा रहा है, क्या कठिनाईयां हैं ? क्या सुझाव हैं । सुधार क्या किया जावे । एकलव्य हरदा के श्री अनवर भाई के साथ अनुवर्तन कर्त्ताओं की एक संगोष्ठी संगम केन्द्र पर शीघ्र ही आयोजित की जावे ऐसा तय किया गया । श्री अनवर भाई के सहयोग से इसकी प्लानिंग की जा रही है ।

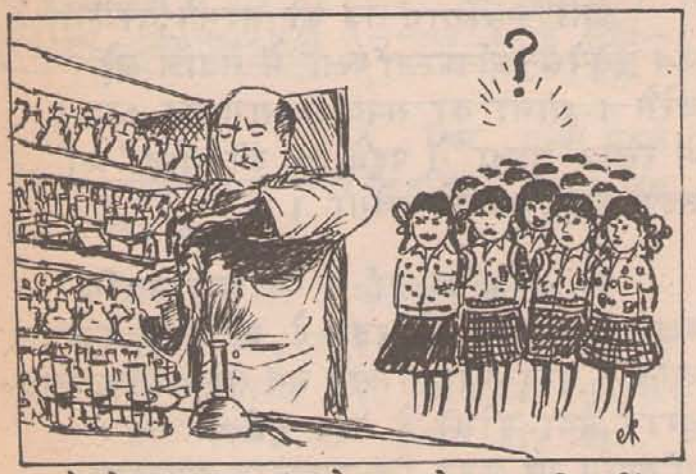

एक अनुवर्तन-कर्त्ता ने बताया कि मैं एक शाला में गया। वहां के विज्ञान शिक्षक स्वयं हाइड्रोजन गैस बनाकर दिखा

रहे थे । छात्राएं केवल देख रही थीं । जबकि शाला में पर्यापत किट सामग्री उपलब्ध थी । यदि मैं यही बात प्रतिवेदन में लिखूं तो विज्ञान शिक्षक के और मेरे व्यक्तिगत संबंध समाप्त होते हैं । ऐसी परिस्थितियां आती रहती हैं । प्रश्नों के उत्तर लिखवा दिए जाते हैं । प्रायोगिक परीक्षा में यदि गैस बनाने को दी जावे तो बच्चे घबराकर अम्लनली तोड़ डालते हैं या देखा-देखी करते हैं ।

एक अनुवर्तन-कर्त्ता ने यह भी प्रश्न उठाया कि यदि शिक्षक प्रयोग निष्ठ विधि से पढ़ा रहे हैं, व छात्रों का स्तर भी बहुत अच्छा है तब अनुवर्तन-कर्त्ता की क्या भूमिका वहां होनी चाहिए ? छात्रों/शिक्षक को किस प्रकार और क्या सहयोग दिया जा सकता है ? अनुवर्तन-कर्त्ता की क्या भूमिका हो इसके लिए एक अनुवर्तन-कर्त्ता ने ही अपनी राय दी कि अनुवर्तन कर्त्ता की भूमिका बहुत नाजुक होती है । वह एक सहायक या पूरक के रूप में शिक्षक की कक्षा में उपस्थित हो । प्रयोग के बाद वह विज्ञान इकाई द्वारा दिए टेस्ट आइटमों की मदद से कक्षा का एवं विषय वस्तु का मूल्यांकन कर सकता है । विषय वस्तु को छात्र कितना समझ पाए या विषयवस्तु छात्रों के स्तर से ऊपर/नीचे है अथवा विषय वस्तु की ऐप्रोच ठीक नहीं है। यदि हम यह उद्देश्य छात्रों को बता दें तो वे बिना नकल किए टेस्ट आइटम के उत्तर देते हैं। उनके अवलोकन से अनुवर्तन-कर्त्ता, शिक्षक एवं विज्ञान इकाई को बहुत मदद मिल सकती है । इसके लिए अनुवर्तन-कर्त्ता सहयोगी बनकर शाला में पहुंचे, अधिकारी बनकर नहीं ।

कुछ अनुवर्तन-कर्त्ताओं ने शालाओं के विज्ञान विषय के समय-विभाग-चक्र के लिए आपत्ती उठाई । उन्होंने बताया कि पूर्व प्रसारित शासकीय आदेशों की अवहेलना की जा रही है । स्पष्ट आदेश हैं कि यदि शाला में केवल 3 कक्षाऐं है या 3 वर्ग हैं, तब दो कक्षाओं को सोम. बुध, शुक्र में दो लगातार कालखन्डों में विज्ञान पढ़ाएं । एक कक्षा को मध्यान्तर के पूर्व, दूसरी कक्षा को मध्यान्तर के बाद कालखन्ड दिए जावें । अन्य कक्षा को मंगल, गुरू, शनि के दिन कालखन्ड दिए जावें । अधिक वर्ग होने पर भी यही क्रम रखा जावे किन्तु अनेक शालाओं ने इस पर ध्यान नहीं दिया है। संगम केन्द्र पर उपलब्ध जानकारी एवं अनुवर्तन-कर्त्ता की आपत्ती इन शालाओं के लिए उभर कर आती है :-

1. कन्या मा·शाला रहटगांव/ सोम, बुध, शुक्र / 9 से 10·10 बजे तक / 6 वीं, 7वीं, 8वीं कक्षा को विज्ञान शिक्षण हो रहा है (अर्थात समान दिनों में समान समय में शिक्षण)

2. मा·शा· धोलपुर, बाजनिया, पोखरनी टेमागांव, भादूगांव शालाओं में दो कक्षाओं को समान समय में एवं समान दिनों में अर्थात सोम, बुध, शुक्र या मंगल, गुरू, शनि विज्ञान पढ़ाया जा रहा है ।

इन शालाओं के अनुवर्तन-कर्त्ताओं को हर बार अनुवर्तन के दिन मात्र एक ही कक्षा में विज्ञान शिक्षण देखने को मिलता है जिसमें पूरा दिन मात्र एक कक्षा के लिए खराब होता है । अन्य कालखन्डों में दूसरे विषय पढ़ाए जाते हैं या छात्र पुस्तक कापियां नहीं लाते ।

प्रश्न यह उठाया गया कि क्या मा·शा·के प्रधानाध्यापक समय विभाग चक्र विधिवत बनाना नहीं चाहते या बना नहीं पाते हैं ? संगम केन्द्राध्यक्ष द्वारा पत्र में उन्हें लिखा भी गया था कि समय विभाग चक्र बनाने में असुविधा होने पर मार्गदर्शन लेने का कष्ट करें । फिर इसे अवहेलना कहा जावे या असमर्थता ।

संदर्भित शालाओं में से मा·शा· टेमागांव के शिक्षक एवं अनुवर्तन-कर्त्ता ने बताया कि उनकी शाला टेमगांव में मध्यान्तर के पश्चात प्रतिदिन एक कक्षा खाली बैठती है। समय विभाग चक्र त्रुटिपूर्ण है लेकिन सुधारे कौन ? कन्या मा·शा· रहटगांव के विज्ञान शिक्षक कहते हैं हमारे यहां शुरू से ही टाईम टेबिल ऐसा बना था इसमें हम (विज्ञान शिक्षक) क्या करें । एक साथ सभी शिक्षक विज्ञान सामग्री निकालते-रखते हैं । जबकि

इस मा·शा· के पास विज्ञान किट अलमारी नहीं है, पेटी (संदूक) में विज्ञान किट ठूंस-ठूंस कर भरा जाता है ।

एक अनुवर्तन-कर्त्ता ने कहा कि संगम केन्द्र अध्यक्ष को विज्ञान से संबंधित व्यवस्था के लिए मा·शा· के प्रधानाध्यापकों, स· जि·शा· निरीक्षकों एवं विकास खंड शिक्षा

अधिक्षक से बार-बार निवेदन ही करना पड़ता है। इनके पास अधिकार नहीं दिए गए हैं इसी का परिणाम है कि -

1. समय विभाग चक्र समय पर नहीं बनते।
2. शालाओं से किट सूची अथवा अन्य जानकारियां समय पर नहीं आतीं ।
3. विज्ञान शिक्षक सभय पर गोष्ठी में उपस्थित नहीं होते ।
4. कुछ मा·शा· के शिक्षक गोष्ठी में भाग ही नहीं लेते ।
5. संगम केन्द्र के पत्रों पर विभाग की कोई उचित एवं त्वरित कार्यवाही नहीं होती- आदि-आदि ।

अगस्त, सितम्बर, अक्टूबर या नवम्बर माह की किसी भी गोष्ठी में प्रशासनिक कठिनाइयों का कोई भी स्थानीय हल नहीं हो पाया । यह आवश्यकता महसूस की गई कि गोष्ठी में कुछ समय के लिए सहा·जि·शा· निरीक्षक अथवा विकास खन्ड शिक्षा अधिकारी को आवश्यक रूप से उपस्थित रहना चाहिए ।

इसी बीच एक अनुभवी विज्ञान शिक्षक ने गोष्ठी के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त किए कि आजकल गोष्ठियों में बार-बार एक जैसी समस्याओं पर ही चर्चा की जाती है । जो विसंगतियां हैं उन्हें शीघ्र ही दूर किया जाना चाहिए ताकि हम कार्यक्रम के मक्सद को पूरा कर सकें । लेकिन हम हर बार घूम फिर कर वहीं आ खड़े होते हैं जहां से चले थे ।

ग्राफ़ बनाना सीखो - एक आकलन

इन सब चर्चाओं के बाद कक्षा सातवीं के लिए लिखा गया नया पाठ "ग्राफ बनाना सीखो" की पांडुलिपियां टोलियों में दी गईं । उद्देश्य स्पष्ट किया गया कि अगले वर्ष कक्षा सातवीं की नयी बाल वैज्ञानिक छप रही है उसी के लिए नये ढंग से तैयार है । आप सभी किताब में छपे अध्याय

एवं पांडुलिपी का तुलनात्मक ढंग से अवलोकन करते हुए ग्राफ के अभ्यास करें । दिए गए ग्राफ कागजों पर व्यास एवं परिधि की तालिका का ग्राफ बनाया गया ।

पहली चर्चा में यह स्पष्ट हुआ कि यह अध्याय बेहतर ढंग से लिखा है। पहले छात्रों को स्प्रिंग की लम्बाई और भार के आंकड़े लेना पड़ते थे, पट्टियां काटनी पड़ती थीं आदि अनेक क्रियाएं थीं जो ग्राफ कम समझाती थीं, श्रम अधिक कराती थीं । इस नये ढंग में बच्चों को केवल तालिका से ग्राफ बनाना है जो अधिक सरल है । सभी ने ग्राफ बनाया । विषय वस्तु को पढ़कर देखा एवं ग्राफ से प्रश्नों के उत्तर निकाले जो स्पष्ट थे ।

पहले छात्र वर्ग और उसके कर्ण से बनी आकृति तथा ग्राफ की आकृति में भ्रमित हो जाते थे क्योंकि कर्ण तथा ग्राफ रेखा दोनों एक ही जैसे दिखते थे ।

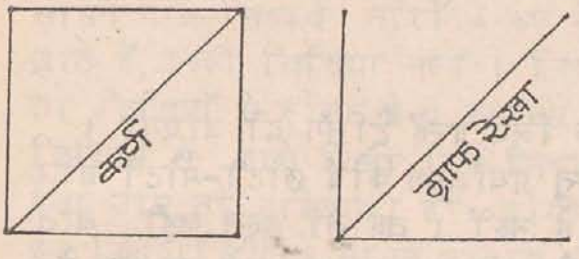

यदि अब हमें वर्ग और कर्ण बनवाना पड़े तब हम कर्ण को ग्राफ रेखा के विपरीत दिशा में बनवायें जैसे -

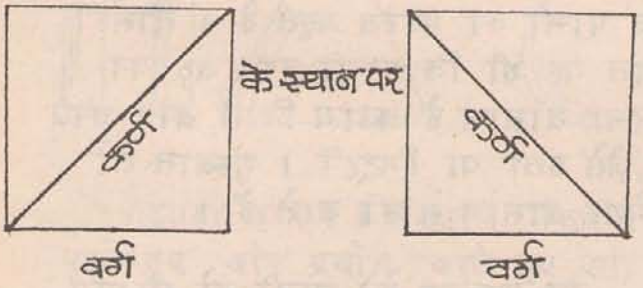

स्प्रिंग तुला में अब प्लास्टिक के स्प्रिंग दिए जावेंगे जिनसे 1 ग्राम, 2 ग्राम आदि भार से स्प्रिंग की लम्बाई नापने का प्रयोग दिया है । भार के लिए प्लास्टिक घन का उपयोग (1 ग्राम के लिए) किया जाएगा । पुराने अध्याय में ग्राफ के केवल 3-4 अभ्यास हैं जिसमें बछिया की उम्र का ग्राफ अवास्तविक है । इस नये अध्याय में यह अवधारणा भी स्पष्ट होती है कि ग्राफ कई प्रकार के आंकड़ों से बनाए जा सकते हैं जैसे, भार-आयतन संबंध, भार-स्प्रिंग की लम्बाई का संबंध, व्यास-परिधि संबंध, समय-दूरी संबंध आदि । नये अध्याय के संबंध में कुछ चर्चाएं और हुईं - हर ग्राफ रेखा शून्य रेखा से शुरू होनी चाहिए या नहीं, क्या ग्राफ रेखा प्रत्येक अंकित बिन्दु से होकर जानी ही चाहिए, यदि ग्राफ सरल रैखिक है ? इस पर यह स्पष्ट किया गया कि यह आवश्यक नहीं है। कुछ बिन्दु जो सरल रेखा में नहीं उन्हें ग्राफ रेखा से छोड़ा जा सकता है । जैसे तांबे के भार - आयतन से संबंधित तालिका में 8 ग्राम तथा 120 ग्राम तक के आयतन वाले बिन्दु ग्राफ रेखा से कुछ हटकर रह जाते हैं ।

इस अध्याय का गहन अध्ययन एवं परीक्षण किया जाना आवश्यक है अत: इसकी एक प्रति संगम केन्द्र पर छोड़ी गई है । कुछ मा॰शा॰ में इस अध्याय को पढ़ा कर इसे जाँचा जाएगा एवं विज्ञान शिक्षकों से समीक्षा ली जावेगी । इस अध्याय पर समयाभाव के कारण चर्चा एवं अभ्यास गोष्ठी में पूर्ण नहीं हो पाए । जल मृदु और कठोर अध्याय भी पुन: लिखा गया है । इसकी भी टेस्टिंग की जाना है ।

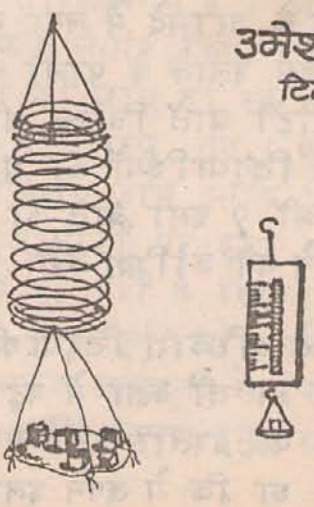

उमेश चौहान
टिमरनी

पानी : बच्चों द्वारा जाँच

12 जुलाई, 1987 । परासिया के लोग पैंच स्टाफ क्लब में एक विशेष जलसे में शामिल होने आए हैं । तीन बजे दोपहर का समय है । यह जलसा अजीब सा ही होने वाला है । परासिया और आसपास के क्षेत्र के पानी की गुणवत्ता पर रिपोर्ट पढ़ी जानी है । यानी पानी पीने के लिए व अन्य उपयोगों के लिए कितना उपयुक्त है । साथ ही साथ पैंच नदी की स्थिति पर भी एक रिपोर्ट पेश होगी । यह रिपोर्ट कोई सरकारी विभाग की ओर से नहीं बल्कि इस इलाके की उच्चतर माध्यमिक शालाओं और महाविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत होनी है । वे बताने वाले हैं कि परासिया, चांदामेटा, न्यूटन आदि के कुओं, झिरियों, हैण्ड-पम्पों आदि का पानी कैसा है ? पीने योग्य है या नहीं ? इस जलसे के शुरू होने से पहले सुबह से ही एक पोस्टर प्रदर्शनी पैंच स्टाफ क्लब के बरामदे में लगा दी गयी थी जिसमें इस इलाके के पानी के बारे में मोटी-मोटी बातें चित्रित थीं । आखिर इन विद्यार्थियों को ये बातें पता कैसे चलीं ? इसी बात का उत्तर हम यहां देने की कोशिश करेंगे ।

इनमें से अधिकांश विद्यार्थी विज्ञान विषय लेकर 11 वीं कक्षा में पढ़ रहे थे । इनके सामने एक प्रस्ताव रखा गया । प्रस्ताव यह था कि ये अपने इलाके के पर्यावरण का वैज्ञानिक अध्ययन करें । इसके लिए इन्हें ट्रेनिंग दी जाएगी । परन्तु पर्यावरण कोई छोटी-मोटी चीज तो है नहीं । वह तो बहुत बड़ी बात है और हमारे आसपास जो कुछ भी है या घटता है या उन चीजों के, घटनाओं के आपसी संबंध, सभी कुछ तो इसमें समाया हुआ है । इसलिए सोचा गया कि पर्यावरण के एक छोटे से हिस्से-पानी, से शुरूआत की जाए । दूसरी बात यह थी कि पानी का महत्व बहुत है । तीसरी बात यह थी कि पानी का अध्ययन करना आसान है बजाय किसी और चीज के, जैसे हवा या मिट्टी । शुरूआत तो हमेशा आसान से ही करते हैं ।

यह प्रस्ताव देने वाली दो संस्थाएं थीं- बनखेड़ी की किशोर भारती और पिपरिया की एकलव्य । 'होशंगाबाद विज्ञान' के पाठक इन दोनों ही संस्थाओं से वाकिफ हैं । मुख्य बात यह है कि दोनों ही शिक्षा के क्षेत्र में बदलाव के लिए काम करती हैं । इन्होंने प्रस्ताव क्यों दिया ?

पर्यावरण का आजकल बहुत हल्ला है और पर्यावरण शिक्षा का भी शुरू हो चला है । देखा यह जा रहा है कि पर्यावरण के विषय में कोई कुछ भी कह दे, चल जाता है क्योंकि इसके व्यवस्थित

अध्ययन की बात तो होती ही नहीं । कोई कह दे पेड़ कटने से बारिश नहीं हो रही तो भी ठीक और कोई कह दे शेर को बचाना पर्यावरण है तो भी ठीक । आखिर निर्णय के मापदण्ड क्या हों? होता यह है कि आम लोगों के सामने मात्र निष्कर्ष नारों के रूप में आते हैं, उनकी विधियां नहीं । निर्णय तो विधियों से होता है । इसलिए विधियों से जाने बिना सिर्फ निष्कर्ष देखा जाए तो नारेबाजी ही होगी । इन विद्यार्थियों के सामने प्रस्ताव रखने का एक कारण तो यही था कि ये अध्ययन की इन विधियों को समझें ।

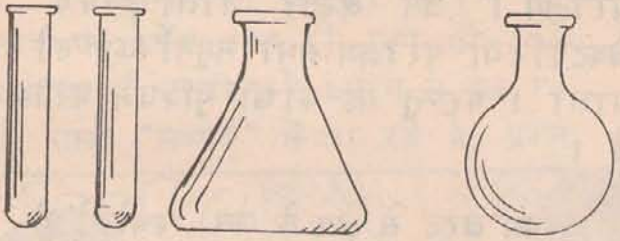

दूसरा कारण । विज्ञान विषय पढ़ते हुए और प्रयोग करते हुए ऐसा होता है कि भई "कोर्स" में है तो करना है । अपने जीवन से कुछ जुड़ता नहीं । वही टाइट्रेशन, वही सूचक घोल, वही फिनाफथलीन, वही ब्यूरेट, पिपेट कैसे उपयोगी काम में लग सकते हैं, यह भी इस प्रस्ताव की भावना थी ।

तीसरा कारण था कि पर्यावरण शिक्षा की बातें खूब हो रही हैं । इसमें मुख्य उद्देश्य यह रहता है कि अन्य विषयों के समान पर्यावरण पर कुछ भाषण बच्चे सुनें । प्रस्ताव में यह विदित ही था कि पर्यावरण शिक्षा का एक वैकल्पिक माडल विकसित हो । इसके पीछे मान्यता यह थी कि पर्यावरण समझने के लिए पर्यावरण से मेलजोल करना जरूरी है ।

खैर, ये सब तो सैद्धांतिक बातें थीं और इन्हें कोई भी झाड़ सकता है। अब कुछ ठोस बात । सबसे पहले तो प्रशिक्षण । दिसम्बर में इन विद्यार्थियों को एक सप्ताह का प्रशिक्षण दिया गया।

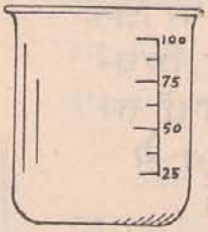

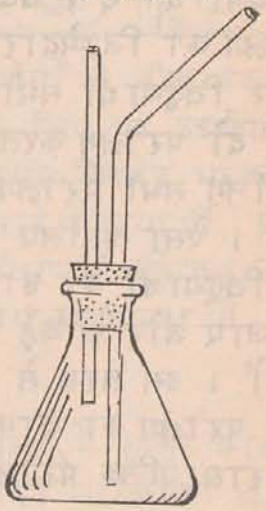

इस दौरान इन्हें पानी के लगभग 10 परीक्षण करना सिखाया गया । प्रतिदिन दो परीक्षण सिखाए जाते थे । परीक्षणों की सूची तालिका में है । कुछ नमूने कृत्रिम रूप से तैयार किए गए ताकि परिणामों की जांच हो सके और कुछ प्राकृतिक नमूने लाए गए । कौन से परीक्षण सिखाए जाएं इसका निर्णय विभिन्न आधारों पर हुआ । उच्चतर माध्यमिक शालाओं के विद्यार्थी इन्हें कर पाएं, महत्वपूर्ण हों, रसायन एवं उपकरण आदि आसानी से उपलब्ध कराए जा सकें, आदि कारण प्रमुख रहे ।

हरेक विद्यालय से 5 विद्यार्थी चुने गए और एक या दो अध्यापक प्रभारी बने । प्रत्येक विद्यार्थी को अपने क्षेत्र के पानी के दो स्त्रोतों से नमूने लाने थे । इनमें से एक स्त्रोत भूमिगत हो और दूसरा कोई अन्य । यह हर महीने हुआ ।परन्तु सभी विद्यार्थी दसों परीक्षण नहीं करते थे । सभी विद्यार्थी अपने नमूने लाकर बेंच पर जमा देते थे । अब हरेक को दो-दो परीक्षण की जिम्मेदारी दी गयी थी । हर विद्यार्थी सभी नमूनों पर उसे दिए गए दो परीक्षण करता था हालांकि उसको ट्रेनिंग सभी परीक्षणों के लिए दी गयी थी । ऐसा इसलिए किया गया था कि हर विद्यार्थी का हाथ दो परीक्षणों पर जम जाए और आंकड़े ज्यादा विश्वसनीय हों । इस तरह से 6 महीनों तक लगातार परीक्षण का काम चला । ये मुख्यत: रासायनिक परीक्षण थे ।

इसके साथ-साथ कालेज के दो छात्रों द्वारा दो तरह के परीक्षण और किए गए। पहला, पेंच नदी का जैविक अध्ययन और

पानी के कुछ नमूनों का बैक्टीरिया परीक्षण । वैसे अच्छा होता यदि बेक्टीरिया परीक्षण सभी नमूनों का हो पाता । परन्तु यह काफी मुश्किल परीक्षण है ।

इस तरह से क्षेत्र के जल स्त्रोतों के बारे में रासायनिक व जैविक जानकारी एकत्रित हुई । पर एक और आयाम इसमें जुड़ना अभी बाकी था । इस जानकारी की लोगों के दैनिक अनुभवों से तुलना । यह देखना जरूरी था कि इस वैज्ञानिक जानकारी का लोगों के अनुभवों से क्या तालमेल है । इसके लिए एक सर्वेक्षण किया गया । ऐसे दस-दस परिवारों से जानकारी प्राप्त की गयी जो इन जल स्त्रोतों का उपयोग करते हैं ।

अब आगे बढ़ने से पहले थोड़ा सा उस इलाके की परिस्थिति को समझ लें जहां यह काम हुआ । परासिया, चांदामेटा और न्यूटन ये तीन पड़ोसी शहर छिंदवाडा जिले में हैं और पेंच नदी की

घाटी में बसे हुए हैं । आसपास पश्चिम कोयला क्षेत्र की कोयला खदानें हैं । काफी पुरानी खदानें हैं । इस क्षेत्र में खेती नहीं के बराबर होती है । खदानों के कारण यहां का पानी समस्या मूलक है और खदान व यातायात के कारण हवा की हालत भी अच्छी नहीं है । जाड़े के दिनों में सुबह-सुबह यदि परासिया की पहाड़ी से न्यूटन शहर ऊपर से देखा जाए तो धुएं से बना एक मैदान नजर आता है जिस पर एक मित्र का कहना है कि ऐसे में उनकी जीप चलाने की इच्छा कई बार हुई ।

ये जानकारी इकट्ठी होने के साथ-साथ एक और बात हो रही थी । ये विद्यार्थी पानी को ध्यान से देख रहे थे, उसके "सम्पर्क" में आ रहे थे. प्रश्न

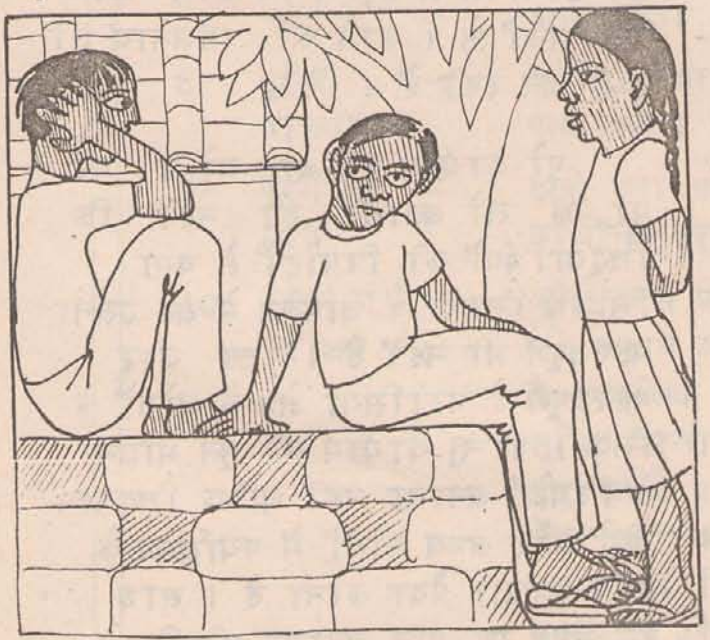

कर रहे थे और धीरे-धीरे पर्यावरण के अन्य अंगों पर भी सोच रहे थे । यही तो थी पर्यावरण जागरूकता! खैर । जब 6 महीने यह काम चल चुका तो ज़रूरत थी इसे व्यवस्थित करने की, समेकित

करने की और लोगों के बीच प्रस्तुत करने की । इसके लिए एक कार्यशाला आयोजित की गयी किशोर भारती में । कार्यक्रम में जुड़े सारे विद्यार्थी, प्रभारी शिक्षक और पर्यावरण से जुड़े कुछ कार्यकर्त्ता इस सात दिवसीय कार्यशाला में शमिल हुए ।

इस कार्यशाला में पहला काम तो यह हुआ कि सारी जानकारी व आंकड़ों के आधार पर रिपोर्ट तैयार की गयी । रिपोर्ट, पांच भागों में तैयार हुई । दूसरा काम हुआ कि रिपोर्ट के आधार पर एक पोस्टर प्रदर्शनी बनायी गयी । इसके अलावा विभिन्न विषयों पर चर्चाएं हुईं । इनमें पर्यावरण की समझ, जंगल, जल चक्र, पानी व हवा प्रदूषण, उद्योगों से स्वास्थ्य का रिश्ता, भोपाल गैस कांड आदि प्रमुख थे । ऐसे भाषण तो यहां-वहां सुनने को मिल ही जाते हैं । इन विषयों पर कोई भी कुछ भी कह सकता है । फिर यहां क्या खास हुआ ? खास यह हुआ कि सुनने वाले स्वयं का कुछ अनुभव लेकर बैठे थे । कोई बात सुनकर वे चुप नहीं रहते थे । वे पूछते थे कि कैसे पता किया, किस आधार पर कह

रहे हैं, यदि अमुक बात सही है तो उससे जोड़कर देखते थे कि और क्या-क्या बातें सही होंगी । यही तो महत्वपूर्ण है । कोई कुछ भी कहे, आपके पास वह हुनर हो जिससे आप दूध को दूध, पानी को पानी पहचान कर कह सकें ।

अब हम चलें वापिस 12 जुलाई पर। प्रदर्शनी सुबह से ही लगा दी गयी थी । विद्यार्थी भाग-भागकर अपना काम आगंतुकों को समझा रहे थे । कितना अच्छा लग रहा था । विद्यार्थी अपनी प्रयोगशाला के निष्कर्षों को आम लोगों को बता रहे थे । आम लोग शायद पहली बार उत्सुक थे कि उनके बच्चों ने स्कूल की प्रयोगशाला में क्या किया । एक और बात वहां हो रही थी । पहले से ही शहर में यह घोषणा कर दी गयी थी कि लोग यदि चाहें तो अपने साथ पानी का नमूना लेते आएं, उसकी जांच करके परिणाम तुरन्त दे दिए जाएंगे । कई लोग शीशियों में पानी भरकर लाए थे । प्रदर्शनी के बीच में सब तामझाम जमा था । सामने ही विद्यार्थी प्रयोग करके बता रहे थे- पानी कितना कठोर है, उसमें कितना क्लोराइड है आदि । साथ ही यह भी कि इससे क्या फायदा-नुकसान है और इसके लिए क्या करना होगा । विज्ञान की विधियां सार्वजनिक हो रहीं थीं ।

तीन बजे आम सभा हुई । बाकी तो भाषण वगैरह होते ही हैं । सभा में कई प्रमुख व्यक्तियों व कई आम व्यक्तियों ने भाग लिया । सबसे प्रभावशाली हिस्सा था विद्यार्थियों द्वारा रिपोर्ट पढ़ी जाना । आशा बन रही थी कि अपने इलाके के पर्यावरण की नियमित जांच उस इलाके की शैक्षणिक संस्थाएं कर सकती हैं । यह काम उन्हीं प्रयोगशालाओं में हो सकता है जहां सामान्यतया ऊपर से निरर्थक, अप्रासंगिक से दिखने वाले प्रयोग किए जाते हैं । क्या यही पर्यावरण शिक्षा का एक माडल नहीं हो सकता ?

खैर, जहां तक किशोर-भारती और एकलव्य के प्रस्ताव का सवाल था वह तो यहीं खत्म हुआ । परन्तु एक बार शुरू होने पर ऐसी प्रक्रियाएं रुकती हैं क्या ? इन शिक्षकों और विद्यार्थियों में कुछ बदल गया था । कुछ और करने की इच्छा बन चुकी थी । क्या करें ? इन लोगों ने मिलकर एक समूह की स्थापना की है -'नीर'! इस नाम का संबंध इस समूह की उत्पत्ति से है, न कि आगे की योजनाओं से । आगे की योजनाएं तो अभी बन रही हैं ।

पूरे कार्यक्रम की बात तो हो गई पर यह तो बताया ही नहीं कि विद्यार्थियों की रिपोर्टों से क्या निष्कर्ष निकला । वास्तव में वह उतना महत्वपूर्ण भी नहीं है । वह जरूर महत्वपूर्ण है परासिया क्षेत्र के लोगों के लिए । परन्तु कार्यक्रम की मूल भावना वे रिपोर्ट बनाना नहीं बल्कि विद्यार्थियों और अन्य लोगों में पर्यावरण के प्रति सजगता पैदा करना है । साथ ही साथ यह बात बताना भी कि ये सारे निष्कर्ष कुछ विधियों पर आधारित होते हैं और इनको जांचा जा सकता है ।

सुशील

:: पानी का परीक्षण ::

1. पी॰एच॰ या हायड्रोजन सान्द्रता
2. अम्लीयता
3. क्षारीयता
4. कठोरता – ज्यादा कठोरता होने से साबुन के साथ झांग नहीं बनते और दाल पकने में परेशानी होती है ।
5. क्लोराइड – पानी के स्वाद पर असर पड़ता है ।
6. फ्लोराइड – पानी में फ्लोराइड कम होने से हड्डियों का विकास ठीक से नहीं हो पाता जबकि एक हद से ज्यादा फ्लोराइड होने पर फ्लोरोसिस नामक बीमारी हो सकती है – इसमें दांत गलने लगते हैं ।
7. लोह – ज्यादा होने पर पाचन क्रिया पर प्रतिकूल असर पड़ता है ।
8. घुलित आक्सीजन – इसकी मात्रा से पानी के कई अन्य गुणों का पता चलता है ।
9. परमैंग्नेट मांग – इससे पता चलता है कि पानी में कितनी कार्बनिक अशुद्धियां हैं ।
10. कोलीफार्म परीक्षण – कोलीफार्म एक प्रकार के बेक्टीरिया होते हैं, जो मनुष्य की आंत में पाये जाते हैं । पानी के प्राकृतिक स्त्रोत में इनका पाया जाना यह सूचित करता है कि यह स्त्रोत मल द्वारा प्रदूषित है । स्वयं कोलीफार्म तो कोई बीमारी पैदा नहीं करते परन्तु इनकी उपस्थिति यह बताती है कि बीमारी जनक बेक्टीरिया उपस्थित हो सकते हैं ।

परीक्षण विधियां एवं आवश्यक सामग्री की सूची किशोर-भारती से प्राप्त की जा सकती है ।

इतिहास पढ़ाना : एक प्रतिक्रिया

प्रयोगात्मक पाठ (होशंगाबाद विज्ञान पत्रिका अक्टू॰ '86) "क्या इतिहास ऐसे भी पढ़ाया जा सकता है ?" - पर टीप

जी हाँ इतिहास ऐसे भी पढ़ाया जा सकता है । "गांवों का बसना" प्रयोगात्मक पाठ होशंगाबाद विज्ञान की सफल पद्धति पर आधारित है । पाठ की पाठ्य वस्तु - संक्षिप्त प्रश्न वाचक वाक्यों में बच्चों को चित्रों के माध्यम से परिस्थितियों का बोध कराया गया है । मेरी शाला में कक्षा- 5 वीं के 8 बच्चों को पाठ पढ़ाकर देखा गया । बच्चों में पाठ्य वस्तु को जानने की सहज ही जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है । बच्चों का कोमल मन पाठ्य-वस्तु को चित्रों के माध्यम से समझने में लग जाता है । बच्चे हर प्रश्न का उत्तर दे पाये ।

पाठ्यवस्तु के अंतर्गत चित्रों को देखकर उत्तर पाने की मंशा से किए गए प्रश्न बोध प्रश्न हैं - जो बच्चों ने पाठ्यवस्तु को कहां तक ग्रहण कर लिया यह जानने के लिए किए जाते हैं । वे बहुत पसन्द आये । इसमें कोई अलग से अध्यापन पद्धति का वर्गीकरण करने की आवश्यक्ता महसूस नहीं की गई।अध्यापकों के लिए ऐसे पाठ पढ़ाना सहज है ।

पाठ के अंत में प्रश्न (पाठ को पढ़कर इन प्रश्नों के उत्तर लिखो) पुनरावृत्ति के प्रश्न हैं जिनके द्वारा बच्चे पाठ्य वस्तु की अच्छी तरह पुनरावृत्ति कर लेते हैं । ये प्रश्न बहुत अच्छे हैं । बोध प्रश्नों से बिल्कुल भिन्न हैं, और होना भी चाहिए ।

परन्तु- प्रयोगात्मक पाठ गांवों का बसना में संक्षिप्त सी पाठ्य वस्तु को पढ़ाने के लिए कितने सारे चित्रों की आवश्यकता हुई । हर पाठ में इतने सारे चित्रों का उपयोग करने में कठिनाई हो सकती है । जैसे इतिहास की पाठ्यवस्तु है "प्रथम स्वतंत्रता संग्राम" इसमें समस्त स्वतंत्रता संग्रामियों के क्रिया-कलाप चित्रों के माध्यम से पढ़ाना होगा । उक्त पाठ्यवस्तु बहुत बड़ी है । क्या आज की परिस्थितियों में ऐसी ऐतिहासिक घटनाओं की पुस्तक होना कठिन बात है ।

अंत में यह कहना चाहूंगा कि प्रयोगात्मक पाठ 'गांवों का बसना' के विषय में यदि 80 फीसदी राय ऐसी आती है जो आपकी कोशिश के उद्देश्य के करीब है तो इतिहास ऐसे भी पढ़ाया जा सकता है। उत्तर सकारात्मक माना जावे और ऐसे कई पाठों की पुस्तक तैयार कर जो वर्तमान पाठ्य-क्रम के अनुरूप हो किसी एक शाला में प्रयोग करने की कोशिश की जाये ।

इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र पढ़ाने का मकसद क्या है ? इनसे बच्चों को क्या-क्या सीखने मिलता है ? इन्हें पढ़ाने से कौन-कौन सी कुशलताएं उनमें विकसित होती हैं ? इन प्रश्नों के बारे में सभी शिक्षकों ने अपने शिक्षक प्रशिक्षण के दौरान ही सोचा और लिखा है, लिखकर

प्रशिक्षण परीक्षा पास कर ली है । परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि प्रयोग कर पाना असंभव है ।

परन्तु आपके द्वारा प्रकाशित प्रयोगोत्मक पाठ में यह विशेषता देखने मिली कि बिना पद्धति के पाठ पढ़ाया ही नहीं जा सकता ।

इतिहास पढ़ाते वक्त कहानी का लहजा प्रयोग में लाना जरूरी समझ में आता है और फिर कहानी में कहानीपन तो अवश्य होना चाहिए ।

वर्तमान पाठ्यक्रम में मैं आपको ऐसी कई पाठ्य वस्तुएं बता सकता हूं जो कहानीपन से इतिहास विषय के अंतर्गत आपकी बताई गई अध्यापन पद्धति से रोचक और ग्राह्य बनाकर बच्चों को पढ़ाई जा सकती है ।

राकेश चौधरी
उमरधा

पहेलियां

1. थर्मामीटर की जान हूँ
रसायन में अपवाद हूँ।
लोग मुझे धातु कहते
देखोगे मुझको बहते।।

2. सैर करा सकती हूँ नभ में
कर सकती हूँ जग को नाश।
जल सकती हूँ बड़े ज़ोर से
लेकिन जल में मेरा वास ।।

3. प्राणियों को साँस लेने योग्य बनाती
कभी-कभी विद्युत बल्ब में भराती।
रहती हूँ प्रोटीन के रूप में
हूँ विश्व में सबसे अधिक मैं।।

4. चाँदी के समान चमकदार हूँ।
कट जाता हूँ चाकू से ।।
पानी से आग लगती मुझमें।
धातु हूँ पर जल से हल्की मैं।।

5. हवा से हल्का मेरा भार
सिरदर्द में आती काम।
मल-मूत्र में पैदा होती
अब बताओ मेरा नाम ।।

⊡ विवेक चाटे, चाँदामेटा

उत्तर : 1. यारा 2. हाइड्रोजन 3. नाइट्रोजन 4. सोडियम 5. अमोनिया

प्राथमिक शाला पाठई का एक दिन

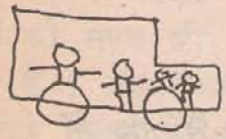

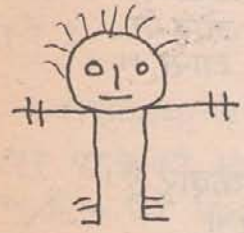

सर्वप्रथम कक्षा में जाकर पहली एवं दूसरी कक्षा के छात्र एवं छात्राओं को अलग बैठाया । फिर उन्हें एक से छ: तक गिनती कार्ड बांट दिये । फिर लाईन से पहले वाले छात्र को खड़ा कर उसके जैसे गिनती कार्ड वाले छात्र/छात्राओं को खड़ा करवाया । इनमें जो दूसरी के थे उन्होंने कार्ड पर बनी आकृति पहचान ली । पहली वालों ने भी अनुमान से कुछ-कुछ आकृति सही पहचानी ।(इन्होंने शायद कार्ड पर बनी आकृति के आधार पर बताया था ।) जब सभी से कार्ड वापस लिए तो कह दिया कि देने से पहले देख लो किसके पास कौनसी आकृति वाला कार्ड है । मैंने सभी से कार्ड लेकर एक में मिला लिए । फिर सभी कार्ड एक स्थान पर फैला कर रख दिए और सभी बच्चों से कहा पहले जिसको जो कार्ड दिया था वो अपना कार्ड उठा ले । सभी ने प्राय: अपना-अपना ही कार्ड निकाला । उसके बाद उनसे कहा, अब देखो यहां तुम्हारे कार्ड जैसे और कितने कार्ड हैं । तो उन्होंने एक सी आकृति वाले कार्ड छांटकर निकाल दिए। कुछ पहली के छात्रों ने उनके कार्ड जैसी कार्ड आकृति के अलावा भी और दूसरे कार्ड भी उठा लिए, फिर मैंने उनसे कहा देखो - ये कार्ड तो तुम्हारे कार्ड से नहीं मिलता-उन्होंने कहा- "हां, बहनजी, जो ऐसा नइ है ।"

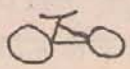

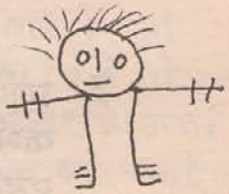

उसके बाद मैंने कार्ड पलटकर उनसे बिन्दी गिनवाई। पहले मैं बोलती गई फिर उनसे बुलवाती गई । एक बिन्दी, दो बिन्दो, और जे तीन बिन्दो, तीन बिन्दी बनी हैं न ? अब कार्ड को पलट कर देखो तीन कैसा लिखा है, ऐसे लिखे अंक को अपन क्या पढ़ेंगे ? अच्छा अब तुमसे पूछेंगे, तीन कहां लिखा है ? बताओ । कुछ ने बताया कुछ नहीं बता पाए । इसके साथ ही पानी पीने की छुट्टी हो गई ।

दस मिनिट के लघु अवकाश के बाद बच्चे वापस आए । अब क्या करें बहनजी ? अब पट्टी पर एक-एक चित्र बनाओ, देखें कौन कैसा चित्र बनाता है ।

सभी अपनी-अपनी पसंद के चित्र बनाने लगे । दूसरी कक्षा के अधिकांश बच्चों ने ट्रक, जीप और ट्रैक्टर के चित्र बनाए । ट्रक और जीप में कुछ यात्री भी बैठाए । गाड़ी में बाकायदा ड्राइवर भी बैठाया, स्टेरिंग पकड़े हुए । उनसे पूछा-ये गाड़ी कौन चला रहा है ? बोले ड्राइवर । उसने क्या पकड़ा है ? बोले चक्का । अच्छा बताओ गाड़ी में कितने पहिए हैं ? किसी ने दो किसी ने चार बताए । उनसे पूछा इसमें कितने आदमी बैठे हैं ? किसी ने तो ढेर सारे कह दिया, और किसी ने गिनकर चार, पांच या छः बताए । एक पहली के छात्र ने दो गोले बनाए ○ ○ । उससे पूछा क्या बनाया है ? बोला साइकल के चक्का हैं । मैंने कहा मेरी साइकल में

तो तीन चक्के हैं । छात्र बोला नई, दोइ हैं । मैंने कहा जा गिनकर आ, उसने देखकर आया और बोला- नइ है दोइ हैं । कुछ छात्राओं ने ऐसा चित्र बनाया । पूछने पर बोली, मुर्गा है । कुछ ने पेड़-पौधे के चित्र भी बनाये, इन पर बात होते-होते आधी छुट्टी हो गई ।

आधी छुट्टी के बाद कंकड़ से गति-विधि, गिनना, मिलाना, कविता, गोल गोल एक्शन के साथ खटखट वाली कविता नानाजी वाली कविता, जोर-शोर से, खूब लम्बी-चौड़ी बातों के साथ । पूरी छुट्टी ।

गंगा गुप्ता

पाठई

विज्ञान-शिक्षण : लड़खड़ाते क़दम

पथरोटा की मासिक गोष्ठी से कुछ अंश-

मासिक गोष्ठी में विषय घिसा-पिटा और पुराना था लेकिन कई बातें ऐसी उभरीं जिन्हें लिपिबद्ध करना आवश्यक है ।
चर्चा थी विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम की नवीनता के खत्म होने की और एक सामान्य ढर्रे पर आ जाने की । "जोश कम है, उत्साह कम है, कर रहे हैं, क्योंकि करना है, जैसे सभी कुछ करना पड़ता है" जैसी कई बातें सामने आईं । हम उनकी भावना को जैसा का तैसा प्रस्तुत करने की कोशिश कर रहे हैं ।

"एक शून्य सा है । नयापन खत्म हो गया । जोश नहीं आ पाता । पहले किट नयी-नयी आई थी हमें भी मालूम नहीं था क्या करना है, कैसे करना है, क्या होगा । नये-नये अवलोकन, नई-नई बातें सामने आतीं थी । हम लोग भी बच्चों को प्रेरित करते थे प्रयोग करने में, उनके साथ सोचते थे कि कैसे अवलोकन आने चाहिएं । अब मालूम है, जल्दी-जल्दी आगे बढ़ा देते हैं । अगर कोई अवलोकन नहीं भी आ रहा तो कह देते हैं कि ऐसा आना चाहिए और उत्तर लिखवा देते हैं । दस साल से वही-वही करते-करते एक ठहराव सा आ गया है ।"

एक और मत

"बच्चों को प्रयोग करवाने पर भी वे जवाब नहीं देते । मास्टर साहब के जवाब का इंतजार करते रहते हैं । जो मास्टर साहब बताएं वही सही है । सोच कर उत्तर देने वाले सवालों में तो बहुत ही दिक्कत आती है । सब चुपचाप बैठे रहते हैं ।"

"अधिकांश शालाओं में विज्ञान के पीरियड़ अन्त में रखे जाते हैं ताकि शिक्षक जितना अधिक समय चाहे प्रयोग व चर्चा के लिए ले सकता है । आखिरी पीरियड़ में बच्चे भाग जाते हैं, भागना चाहते हैं, शिक्षक को भी खत्म कर घर जाने की जल्दी होती है । फिर कभी कोई समारोह होता है, कभी कोई । आखिर के पीरियड़ कई दिन नहीं हो पाते ।
आखिर का पीरियड़ आते-आते बच्चे भी थक जाते हैं और शिक्षक भी । बच्चे सोच-कर जवाब देने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं होते ।"

"इसमें बच्चों को बात करने की, इधर-उधर जाने की स्वतंत्रता से भी दिक्कत होती है । बच्चे स्वतंत्र न होकर स्वछंद हो जाते हैं । मौज मस्ती करते हैं । ज्यादा विवाद करते हैं और जरूरत से ज्यादा खुल जाते हैं । उनके अनुभव में स्वतंत्रता से कार्य करना नहीं है और इसलिए वह संतुलन नहीं रख पाते ।"

"बच्चों को प्रयोग करने में तो रूचि होती है लेकिन सभी प्रयोगों में नहीं । कुछ प्रयोगों में उनको विशेष रूचि आती है और कुछ बहुत नीरस से लगते हैं । मुश्किल प्रयोग करने में भी आमतौर पर दिक्कत होती है ।

"बच्चे प्रयोग स्वयं नहीं कर सकते । किताब से पढ़ कर तो बिल्कुल ही नहीं । पहले उन्हें पढ़ कर समझाना होता है, करके दिखाना होता है उसके बाद ही वे प्रयोग कर सकते हैं । वैसे अधिकांश स्कूलों में ज्यादा समय तो शिक्षक ही प्रयोग करके दिखा देता है । डिमांस्ट्रेशन टाईप होता है ।"

"बाकि विषयों और इसमें काफी अन्तर है । इसमें हम बच्चे को सोचने को कहते हैं । करने को कहते हैं । बाकी छह विषय में कहते हैं सोचो मत, रटो ।
एक में हम बच्चे को कहते हैं तुम सक्षम हो दौड़ो और बाकी सब विषयों में उंगली पकड़ कर चलाते हैं ।"

"कुछ अध्याय बहुत मुश्किल हैं । वर्गीकरण के नियम, सजीव-निर्जीव । इनमें बहुत ज्यादा सोच कर जवाब देने की अपेक्षा है । वर्गीकरण में रूचि नहीं आती क्योंकि बच्चे सोच कर गुणधर्म को आगे नहीं बढा पाते ।"

समूहीकरण की शुरूआत में वस्तुओं में अन्तर व समानताएं पहचानने का अभ्यास है ।
"इसमें बच्चों को मुश्किल होती है । एक बार एक दिशा में बढ़ने के बाद वे दूसरी दिशा में नहीं जा सकते ।
यदि उनसे समानताएं पूछना शुरू करें तो वह समानता ही समानता बताते चले जाएंगे । लेकिन समानता पूछने के बाद यदि अन्तर पूछ लिया तो वे उलझ जाते हैं । जिससे शुरू किया वही बताते हैं । बदल नहीं पाते ।"

"प्रजनन अध्याय को पढ़ाने में दिक्कत है । हम तो छोड़ देते हैं । बच्चों को कह देते हैं कि खुद पढ़ लें । इसमें कोई खास बात नहीं है ।
यदि कक्षा में लड़के और लड़कियां हैं तो फब्तियां शुरू हो जाती हैं । बालकों की उस समय उम्र ही ऐसी है । मास्टर की इज्जत नहीं रहती ।"

"यदि हम सीधे और सपाट तरीके से बात करें तो कुछ नहीं होता । यह शिक्षक पर निर्भर है कि कक्षा में इस अध्याय पर बगैर परेशानी के बातचीत करता है या नहीं ।"

"यदि शिक्षक का भाव निर्विकार है और उसका दिमाग इस बातचीत में अश्लीलता की ओर नहीं जाता । वह बगैर हिचक के पढ़ाता है तो बच्चों को भी इस में कोई दिक्कत नहीं होती ।"

"हमारे समाज में इस तरह की बातचीत पर प्रतिबंध है । एक प्राकृतिक प्रक्रिया को छिपाने की कोशिश है । हमारी ही हिचक कक्षा में झलकती है । पढ़ा कर देखें । उदाहरण ऐसे ले सकते हैं जो पौधों में प्रजनन से हों ।"

सवालीराम का ख़त

हाल ही में प्रकाशित प्रश्न बैंक से सभी शिक्षक गण परिचित होंगे ही । अधिकांश बच्चों ने इन्हें युद्ध स्तर पर खरोदना चालू कर दिया है । प्रश्न बैंक क्या है, क्यों है, किसलिए है ? यह जानना बच्चों के लिए काफी जरूरी है । इसी संबंध में, सवालीराम की बच्चों के नाम एक चिट्ठी हम यहां प्रकाशित कर रहे हैं, आप शिक्षक साथियों से आग्रह है कि बच्चों तक इस पत्र की बातें पहुंचाएं ।

:: बाल वैज्ञानिकों के लिए अभ्यास ::

करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान ।
रसरी आवत जात ते सिल पर परत निशान ।।

तुमने कक्षा में प्रयोग, परिभ्रमण और चर्चा द्वारा जो कुछ सीखा है उसे पुख्ता करने के लिए और अपनी समझ को आगे बढ़ाने के लिए जरूरी है कि तुम प्रश्न स्वयं हल करो और नए-नए प्रयोग खुद करो । इसी में मदद करने के लिए अध्यायवार अभ्यास के प्रयोग और प्रश्न इस पुस्तिका में दिए हैं । अब देखें इनमें से कितने तुम स्वयं अपनी बुद्धि और कौशल के बल पर कर सकते हो ।

इस पुस्तिका में दिए प्रयोग और प्रश्न बहुत लोगों की मेहनत से पिछले तेरह वर्षों से बनते आए हैं । कई तो

परीक्षा या टेस्टों में पूछे गए हैं । कई प्रश्न प्रशिक्षण और मासिक गोष्ठियों के दौरान शिक्षकों से करवाए गए हैं। और बहुत से अनुवर्तन के समय या अन्य मौकों पर तैयार किए गए हैं ।

जैसा कि तुम जानते हो, होशंगाबाद विज्ञान में रटे रटाए जवाब वाले सवाल नहीं पूछे जाते हैं। वे परखते हैं कि :-

1. अध्यायों में सीखे हुए सिद्धांतों की तुम्हारी समझ कितनी गहरी है, और उनकी मदद से तुम नई समस्याएं कैसे हल कर सकते हो,
2. तुम्हें प्रयोग करना कितनी अच्छी तरह से आता है,
3. तुमने तालिका, स्तंभालेख, ग्राफ, नक्शा, चित्र, वर्गीकरण चित्र, परिपथ चित्र आदि बनाना और समझना कितना सीखा है
4. तुम्हें दूरी, क्षेत्रफल, आयतन, भार, समय व तापमान नापना, नाप में दशमलव का हिसाब, इकाई में परिवर्तन करना, न्यूनतम नाप पता लगाना आता है या नहीं
5. तुम्हें अवलोकन या दी गई जानकारी के आधार पर तर्क करके निष्कर्ष निकालना आता है?

इस पुस्तिका में ऐसे ही प्रश्न और प्रयोग दिए गए हैं । जैसा कि परीक्षा में भी होता है, इनको हल करने के लिए तुम अपनी बाल वैज्ञानिक पुस्तकों और कापियों की मदद ले सकते हो ।

ये अभ्यास तुम्हारे लिए घर पर करने को हैं, कक्षा में नहीं । यह बहुत जरूरी है कि तुम ये सवाल और प्रयोग खुद करने की कोशिश करो । अपने गुरूजी या बहनजी, घर पर बड़ों या साथियों से मदद तभी लेना जब तुम अटक जाओ और खुद कुछ समझ न आए ।

एक बात से हम तुम्हें खबरदार जरूर कर दें -शायद बहुत जल्दी इन अभ्यासों की कुंजी बाजार में किताबों की दूकानों पर मिलने लगेगी । उनमें सब प्रश्नों के उत्तर दिए होंगे, कुछ सही और कुछ गलत। जो लोग ऐसी कुंजियां लिखते, छापते या बेचते हैं वो तो चाहेंगे कि तुम उन्हें खरीदो। पर तुम सतर्क रहना । तुम्हारे कुंजी खरीदने से उन्हें तो खूब मुनाफा होगा पर तुम्हें नुकसान ही नुकसान । कुंजी के हल पढ़कर तुम खुद प्रश्न हल करना तो सीखोगे नहीं। कुंजी से रटने पर तुम्हारी अपनी समझ कभी भी नहीं बनेगी और विज्ञान हमेशा कठिन लगेगा । मुख्य बात तो यह है कि परीक्षा में जो सवाल पूछे जाएंगे वे नए होंगे और इस पुस्तक के नहीं । अब खुद ही सोचो, कुंजी तुम्हें मदद करेगी या नुकसान पहुंचाएगी ?

इस पुस्तिका में जो प्रश्न और प्रयोग दिए हैं उनके अलावा और बहुत सारे बनाए जा सकते हैं । होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से जुड़े सब शिक्षकों, बच्चों और अन्य लोगों को चुनौती है कि और नए-नए बढ़िया प्रश्न बनाकर भेजें ।

तुम्हारा,

सवालीराम

काँच की कहानी

कांच को जब भी देखता हूं हैरान सा रह जाता हूं । सोचिए क्या कांच के अलावा कोई ऐसी चीज होती है जो एकदम पारदर्शी हो, काफी सख्त होकर भी आसानी से टूट सकती हो, जिस पर रसायनों का खास असर नहीं पड़ता है, वर्षों तक पानी में पड़े रहने पर भी वैसी की वैसी हालत में बनी रहती है। न गर्मी उसका कुछ बिगाड़ सकती है और न बिजली ही ।

लेकिन इस सबके बावजूद जरा हाथ से कांच छूटा कि चूर-चूर हो गया । किसी भी आकस्मिक चोट या झटके को सह सकने की ताकत नहीं है उसमें ।

ये सब तो ठीक है फिर भी लोहे तक को गला देने वाले रसायनों को हम निश्चिंतता से कांच के बर्तन में रख सकते हैं, ऐसा क्यों ?

वास्तव में हर बार, जब भी कांच को देखता हूं, उसके बारे में सोचता हूं, उसमें कुछ न कुछ नया जरूर नज़र आता है ।

और फिर अपने आप ही जेहन में अगला सवाल उभरता है कि क्या इसे खोदकर जमीन में से निकाला जाता है या फिर यह समुद्रों में पाया जाता है ? क्या पौधों से तो नहीं मिलता होगा ? फिर यह आता कहां से है ? कहीं यह फैक्ट्री में तो नहीं बनता ?

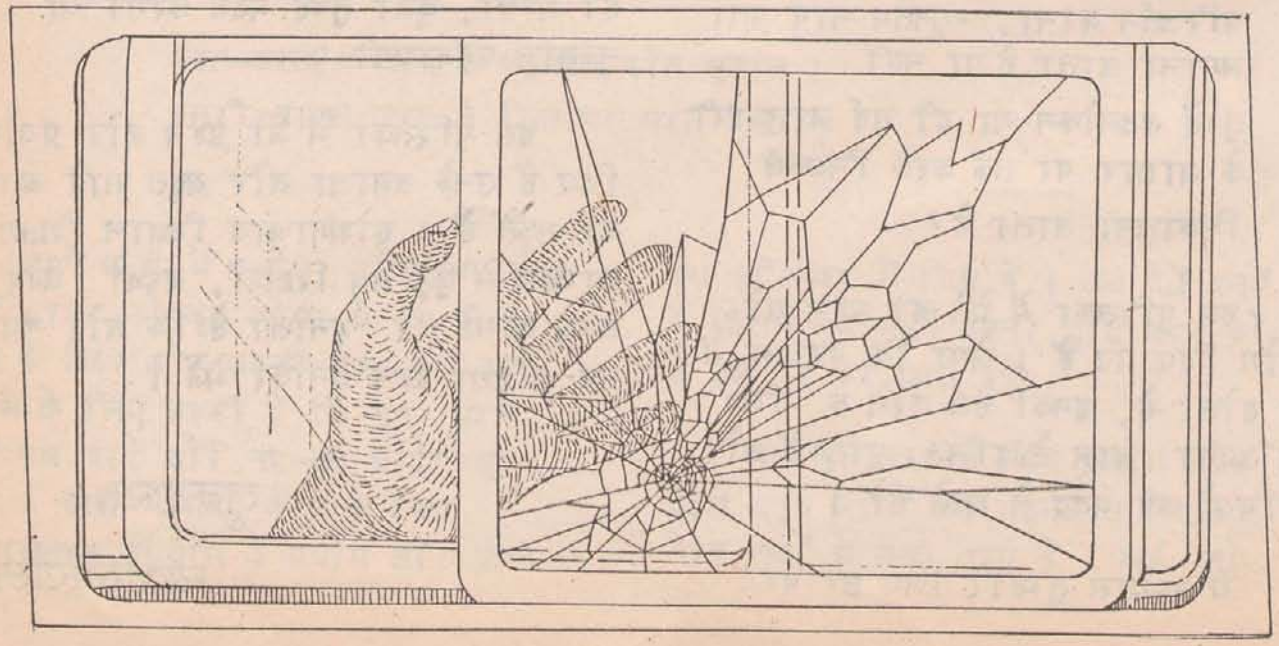

जब स्कूल में थे तो लोहा, तांबा, चांदी, सोना आदि के बारे में तो बहुत कुछ पढ़ा था परन्तु कांच का कहीं नामो-निशान ही नहीं था और यदि कहीं होगा भी तो इतना कम और इस तरह से कि आज याद ही नहीं है ।

कभी मौका भी नहीं मिला था खोजबीन करने का । उस दिन देखा सवालीराम- चचा बैठे-बैठे सिर खुजला रहे हैं और साथ-साथ कुछ पढ़कर मुस्कराते हुए सिर भी हिला रहे हैं । कुछ देर तो मैं खड़ा देखता रहा फिर रुका नहीं गया और पूछ बैठा, "चचा, यह मुस्कराहट क्यों ?"

सवालीराम-चचा ने चश्मा उतारा और मेरी तरफ देखते हुए बोले, "मालूम है कांच कैसे बनता है ?"

मैंने नहीं में सिर हिलाया और बैठ गया उनके पास । मानोगे तुम , उन्होंने बताया कि रेत, चूना और सोड़ा मिलाकर गर्म करते हैं, इतना गर्म कि वे पिघल जाएं और फिर ठंडा करने से कांच बन जाता है ।

मानने में नहीं आया उस दिन और आज भी जब कभी सोचता हूं विश्वास नहीं आता ।

रेत, चूना और सोड़ा मिलकर कांच बनायेंगे ?···हूं, क्या औकात है उनकी ? चचा से पूछने की कोशिश की, "कैसे ?" "क्यों ?" सवालीराम - चचा की आदत तो तुम्हें मालूम है ही-ज्यादा कुछ बताया नहीं और पकड़ा दीं चार-छः किताबें, "पढ़ो इन्हें ।"

जब कभी समय मिला 10-15 पन्ने उलट देता । लम्बे-चौड़े नाम और फार्मूले तो समझ में आये नहीं । पर और भी बहुत कुछ था उन किताबों में जो थोड़ा बहुत समझ में आ गया । पढ़ते-पढ़ते पता चला कि सबसे पहला कांच तो बहुत ही पहले प्रकृति ने ही बनाया था ।

कहीं-कहीं वही पदार्थ जो रेत, चूना और सोडा में पाये जाते हैं संयोग से आपस में मिल गए । धरती की गर्मी की वजह से पिघल गए और फिर ठंडे होने से अस्पष्ट से मटमैले कांच की चट्टानों में बदल गए । आज भी कई जगह दुनिया में ऐसे कांच के पहाड़ और खदानें पाई जाती हैं ।

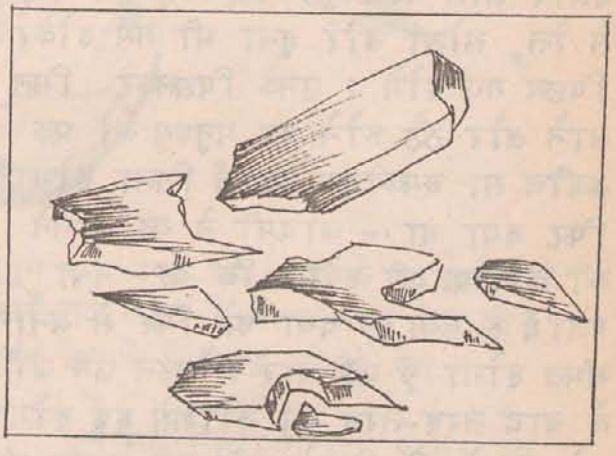

हज़ारों साल पहले जब आदिमानव ने कुदरती कांच की चमकीली चट्टानें और टुकड़े देखे होंगे तो उसे जरूर हैरानी हुई होगी । तोड़ने की कोशिश की होगी तो अजीब तरह से टूटा होगा-छोटे-छोटे तीखे टुकड़ों में । यह सब उस समय की बात है जब मनुष्य ने लोहा तांबा, पीतल आदि धातुओं को धरती में पाये जाने वाले यौगिकों में से निकालना नहीं सीखा था । उस समय

उसके सब औजार पत्थर, लकड़ी और हड्डियों से ही बने होते थे ।

इसलिए जहां पर इस तरह का प्राकृतिक कांच पाया जाता था वहां उसने इन तेज धार वाले और नुकीले टुकड़ों का, काटने और खुरचने के औजार के लिए इस्तेमाल करना शुरू कर दिया । क्योंकि प्राकृतिक कांच हर जगह तो पाया नहीं जाता था इसलिए औजारों के लिए उसका उपयोग दुनिया के सिर्फ कुछ ही हिस्सों तक सीमित रहा ।

आग का इस्तेमाल तो मनुष्य लाखों सालों से जानता है । आज से पांच-छः हजार साल पहले कुछ गर्म करते हुए संयोग से रेत, सोडा और चूना भी गर्म होकर पिघल गए होंगे । उनके पिघलकर मिल जाने और ठंडे होने पर मनुष्य को एक अजीब सा चमकीला पदार्थ मिला होगा। फिर क्या था - आदमी ने यह जानने की कोशिश की होगी कि यह नया पदार्थ है क्या ? क्या इसे फिर से बनाना संभव होगा ? एक बार कौतूहल जग जाने के बाद तरह-तरह की कोशिशें हुई होंगी, उसे बनाने की-जिनसे कांच का बनना संभव हुआ और आदमी को कांच बनाने का तरीका समझ में आया । हमारे पास यह जानने का कोई तरीका नहीं है कि दुनिया के किन-किन हिस्सों में ऐसे प्रयोग हुए और इस पूरी प्रक्रिया में कितना समय लगा । इसलिए हमने कांच की खोज के बारे में जो लिखा है वह, हमें उस जमाने के कांच के जो अवशेष मिले हैं, इनके आधार पर लगाया हुआ अनुमान है । परन्तु एक बार आदमी को कांच बनाने का तरीका आ गया तो उसके सामने तरह-तरह के सुन्दर, रंग-बिरंगे आभूषण, खोखले बर्तन, तिलस्मी मुखौटे··· इत्यादि का एक नया खजाना ही खुल गया ।

उस समय कांच का जो भी आकार बनाना होता उसी आकार का एक गीली मिट्टी या रेत का ढांचा बना लेते ।

फिर उस ढांचे को बार-बार पिघले हुए कांच में डुबोते जिससे एक के बाद एक कांच की पतली पर्तें चढती जायें । पर्त काफी मोटी हो जाने पर उसे ठंडा किया जाता और ठंडा हो जाने पर उसमें से मिट्टी/रेत निकाल लेते जिससे कांच का मनचाहा आकार बन जाता ।

इसके बाद शुरू होता इन्हें रंगने और चमकाने का काम- ज्यादातर राजाओं कबीले के सरदारों और कबीले के बुजुर्गों के लिए । उस समय कांच की विविध वस्तुएं बनाने का केन्द्र था- उत्तरी अफ्रीका में आज का मिस्त्र देश ।

फिर बाईस-तेईस सौ साल पहले साधारण सा दिखने वाला परन्तु एक बहुत ही महत्वपूर्ण आविष्कार हुआ। किसी ने ढूंढ निकाला कि अगर लोहे की पोली नली के एक सिरे पर पिघले हुए कांच की लुगदी रखकर दूसरे सिरे से फूंका

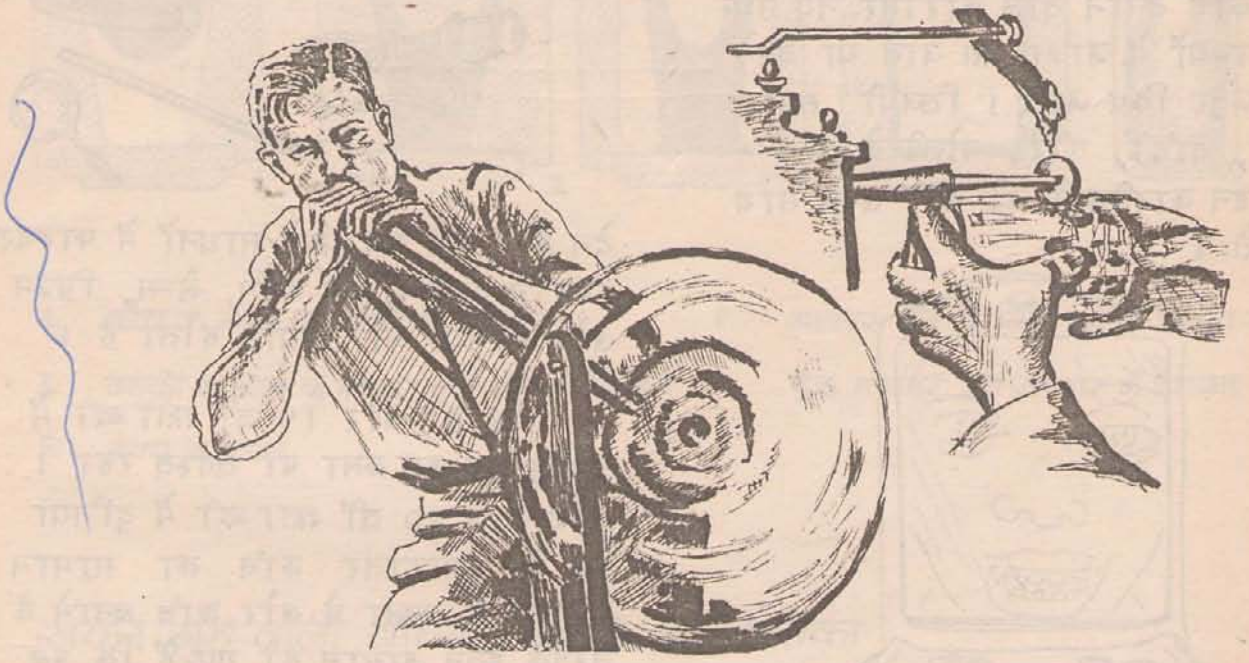

जाये तो कांच का एक गोला सा बन जाता है जिसे तेजी से घुमाकर, हाथों की मदद से या अन्य किसी तरीके से मनचाहे आकार में बदला जा सकता है।

इस कांच के गोले को खोखले सांचे में डालकर और फिर फूंक मारकर साचे का आकार भी दिया जा सकता है। यह नया तरीका आसान था और इससे समय की भी काफी बचत होती थी। दाम भी कम हो जाने की वजह से अब कांच महलों से उतरकर आम जनता के साजो-सामान का एक हिस्सा बन गया।

उस समय बनाया जाने वाला अधिकतर कांच रेत, चूने और सोडा में मिली हुई अशुद्धियों की वजह से रंगीन होता था। रोम में शुरुआत हुई भार में हल्के और तकरीबन रंगहीन कांच की। और उसी के साथ कांच के इतिहास ने एक नया मोड़ लिया- उसके कलात्मक नमूने भी बनने लगे। इसके बाद, सैकड़ों वर्षों तक समय के साथ-साथ बेहतरीन कांच बनाने के केन्द्र बदलते गए।

उन सब किताबों को पढ़कर एक और बहुत मजेदार बात समझ में आई। अच्छे कांच की सामग्री और कलात्मक नमूने ज्यादातर उसी साम्राज्य में बनते जो उस वक्त ताकतवर या मजबूत होता। और अच्छा कांच बनाने की इस कला को हीरे-जवाहरातों की तरह छुपा-छुपा कर रखा जाता। कांच बनाने की भट्टियां शहर से बाहर लगाई जातीं ताकि निपुण कारीगरों की पहरेदारी आसानी से की जा सके। यह विशेष ध्यान रखा जाता कि वे कहीं देश छोड़कर चले न जायें।

कभी-कभी तो उन्हें रोके रखने के लिए दंड का भी इस्तेमाल किया जाता । और जैसे-जैसे वह साम्राज्य गिरावट/पतन की ओर बढ़ता, यह कला भी खत्म होनी शुरू हो जाती ।

कांच बनाने वाले कारीगर नये उभर रहे राज्यों में जाकर बस जाते या बसने पर मजबूर किए जाते । विजयी सम्राट सोना, चांदी, हीरे, मोती के साथ - साथ इन कारीगरों को भी अपने साथ ले जाते ।

सदियों तक यही क्रम चलता रहा। फिर 15-16 वीं शताब्दी में वेनिस में एक करीब-करीब रंगहीन और पारदर्शी कांच बनाया गया । अभी तक हीरे - मोतियों की नकल करते हुए रंगीन, चमकीले कांच बनाने पर जोर था । पर वेनिस में बनाए गए इस रंगहीन कांच को "क्रिस्टेलो" नाम दिया गया ।

उसी अर्से के दौरान काफी हद तक "क्रिस्टेलो" कांच की वजह से दुनिया के विभिन्न भागों में विज्ञान से जुड़े कई नये आविष्कार हुए । सूक्ष्मदर्शी, दूरबीन, कैमरा और थर्मामीटर- सब सत्रहवीं शताब्दी की

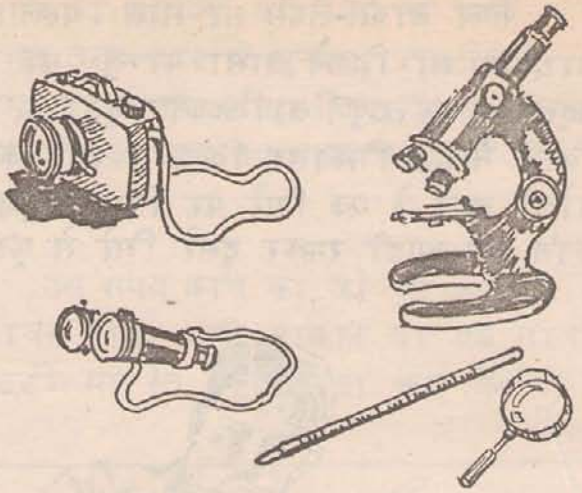

देन हैं । इन सब यंत्रों/साधनों में पारदर्शी रंगहीन कांच से बने दर्पण, लैन्स, प्रिज्म और नलियों का उपयोग होता है ।

18 वीं और 19 वीं शताब्दी में इंग्लैंड का इस कला पर वर्चस्व रहा । और आज 20 वीं शताब्दी में दुनिया भर में ज्यादातर कांच का सामान मशीनों से बनता है और कांच बनाने के तरीके इतने आसान हो गए हैं कि अब इन तकनीकों पर किसी देश का एकाधिकार नहीं रहा । हां, फिर भी बहुत ही अच्छा कांच अब भी दुनिया में कुछ ही जगहों पर बनता है ।

राजेश खिंदरी

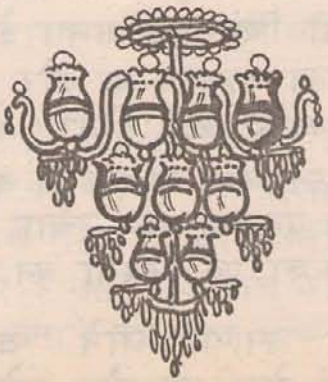

चौड़े मुँह वाली बोतल बनाने का तरीका

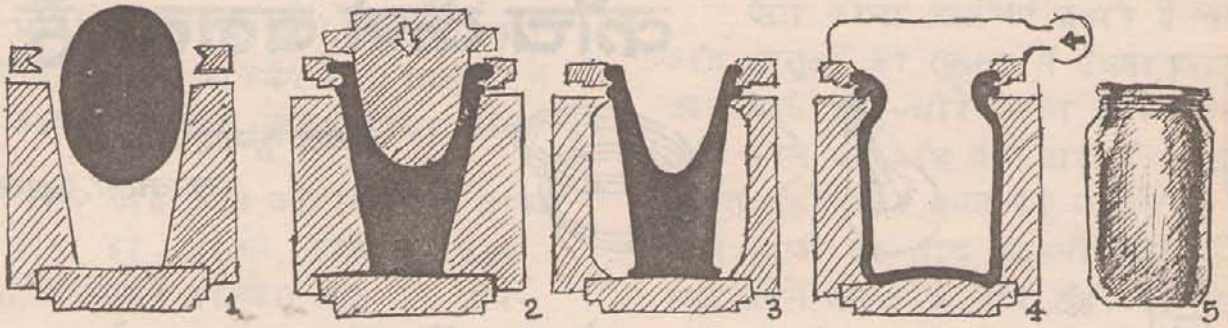

1. काँच के गोले का साँचे में डाला जाना
2. आकार देने के लिये उसको दबाया जाना
3. उसको मर्तबान के आकार वाले साँचे में रखाजाना
4. फूँक मारकर उसे आकार में ढालना
5. तैयार मर्तबान

संकरे मुँह वाली बोतल बनाने का तरीका

1. काँच के गोले का साँचे में डाला जाना
2. गरदन का बनाया जाना
3. गरदन के मार्ग से फूँकी हवा द्वारा खोखली आकृति बनाना
4. खोखली आकृति को निकालकर
5. बोतल के साँचे में पहुँचाना
6. बोतल को फूँककर अन्तिम रूप दिया जाना
7. तैयार बोतल

सवालीराम

कांच कैसे बनता है ?

जयंत कुमार नागर
नामली, रतलाम

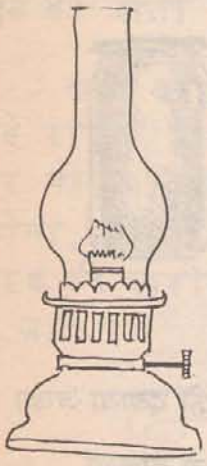

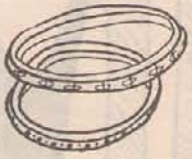

कांच का यह सवाल पढ़कर तुम्हें चश्में, चूड़ियां, बोतलें, आइने, गिलास, बल्ब, खिड़की के शीशे, परखनली, उफननली और न जाने किन-किन चीजों का ध्यान हो आया होगा । कांच की बनी ये चीजें जितनी रोचक लगती हैं उतनी ही मजेदार कांच बनानें की प्रकिया भी है ।

कांच रेत (सिलीका), सोड़ा और चूने को मिलाकार खूब गर्म करने से बनता है । इन तीनों पदार्थों को भट्टी में तब तक गर्म किया जाता है जब तक ये अच्छी तरह पिघल न जायें। फिर पिघली हुई अवस्था में इसे काफी देर तक रहने दिया जाता है ताकि इसमें फंसी हुई गैसें (मुख्य रूप से कार्बन डाइ-आक्साइड) बुलबुले बनकर निकल जायें । अगर ऐसा न करें तो कांच पूरी तरह से पारदर्शी नहीं बन पाता-उसमें हवा के छोटे-छोटे बुलबुले दिखाई देते हैं ।साथ में कुछ कमजोर भी हो जाता है और आसानी से टूट सकता है ।

किसी चीज की ठोकर लगने पर टूटना या न टूटना इस बात पर निर्भर है कि उसके पदार्थ में कितनी विकृतियां हैं । यदि एक ऐसी वस्तु हो जिसके पदार्थ में बुलबुले, अशुद्धियां आदि नहीं हैं और न ही पदार्थ का असमान वितरण है-तो उसमें चोट का झटका अधिक सरलता से फैल जाता है और पूरी की पूरी वस्तु कंपन करने लगती है । दरार या चीरा पड़ने के लिए असमान कंपन जरूरी है जिससे कि वस्तु के जुड़े हुए हिस्सों के बीच का जुड़ाव टूटे । यानी कि अगर किसी पदार्थ का एक हिस्सा कंपन कर रहा है और किसी वजह से दूसरा हिस्सा कंपन नहीं

कर रहा तो उस पदार्थ में दरार या चीरा आसानी से पड़ सकता है । अशुद्धियां और विकृतियां इसमें मदद करती हैं । वैसे यह भंगुरशीलता पदार्थ की प्रकृति पर भी निर्भर है या पदार्थ के अणुओं के बीच कितना आकर्षण है । धातुओं में यह आकर्षण कांच से बहुत ज्यादा होता है।

इसके बाद कांच को जिस भी आकार में ढालना हो—बोतल, गिलास, बल्ब इत्यादि उसमें ढालकर बहुत ही धीरे-धीरे कई घंटों तक ठंडा किया जाता है । ऐसा करने के लिए उन्हें एक जाली की बनी बेल्ट पर भट्टी के अन्दर रख दिया जाता है । यह एक लम्बी सी भट्टी होती है जिसका एक सिरा गर्म और दूसरा उसके मुकाबले ठंडा होता है । बेल्ट गर्म सिरे से ठंडे सिरे की ओर निर्धारित की हुई गति के मुताबिक तेज या धीमी करके कांच को चंद घंटों से कुछ दिनों तक ठंडा होने दिया जा सकता है ।

ऐसा करना इसलिए जरूरी है क्योंकि कांच धातुओं की तुलना में उष्मा का वहन बहुत धीरे-धीरे करता है । एकदम ठंडा करने पर कांच की बाहरी सतह तुरन्त ठंडी और सख्त हो जाती है । इससे काफी देर बाद अंदरूनी सतह भी ठंडी होने लगती है और ठंडी होने पर सिकुड़ती है । परन्तु बाहरी सतह जो सख्त/कठोर हो चुकी होती है, इस सिकुड़ने का प्रतिरोध करती है ।

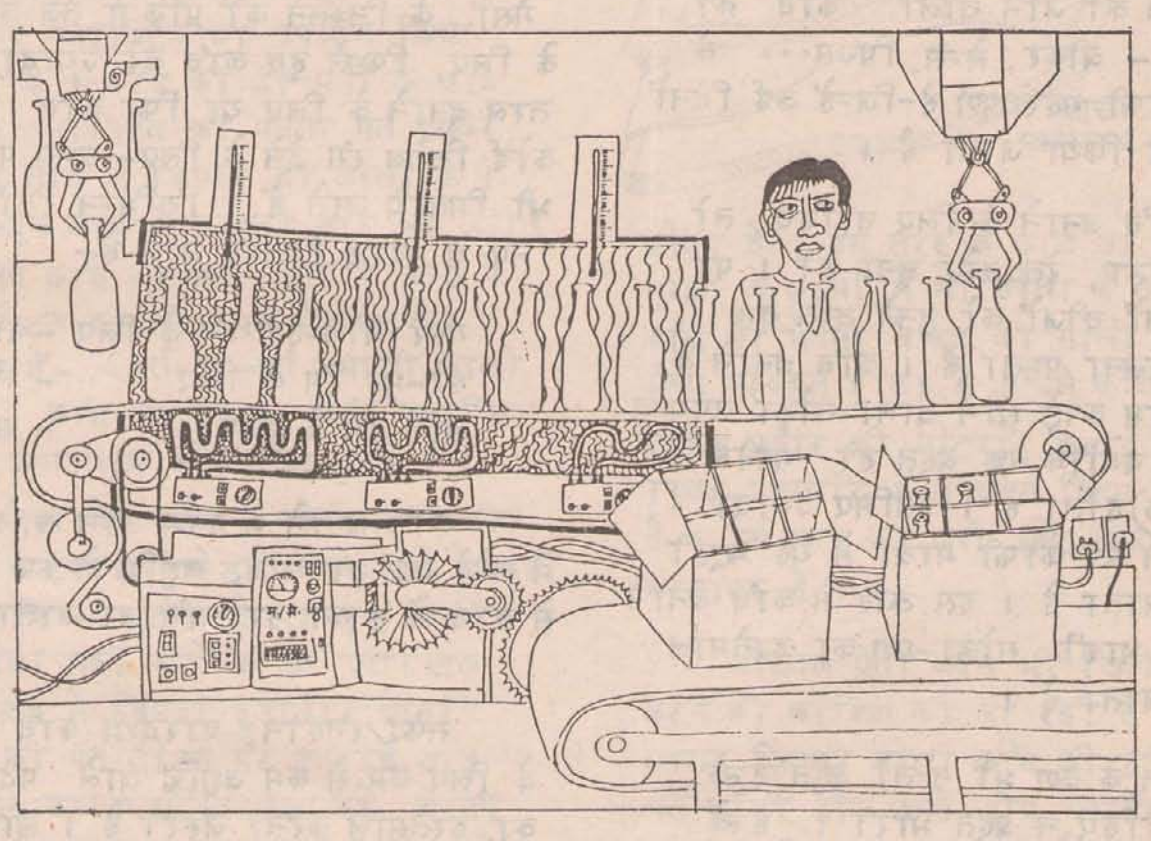

कांच पर दबाव पड़ने पर या गिरने पर, कांच के अन्दर या बाहरी सतह पर जहां भी ये विकृतियां होती

हैं उस जगह सब से पहले दरार की शुरूआत होती है जो फिर फैलती ही जाती है । यह कुछ उसी तरह है जैसे जब कपड़े पर एक बार चीरा लग जाता है जो यह बहुत आसानी से उसके बाद फटता ही जाता है ।

इसलिए कांच को ठंडा करने की प्रक्रिया जितनी धीरे की जायेगी-कांच उतना ही विकृति-रहित और मजबूत बनेगा । खासकर यह प्रयोगशाला में इस्तेमाल की जाने वाली कांच की सामग्री – बीकर, लेन्स, प्रिज्म··· के लिए काफी महत्वपूर्ण है-जिन्हें कई दिनों तक ठंडा किया जाता है ।

कांच बनाने के लिए चाहिए तो सिर्फ सोड़ा, रेत और चूना ही । पर इन तीनों चीजों को चुनते वक्त कुछ ध्यान रखना पड़ता है । कांच बनाने के लिए आम कपड़े धोने वाला सोड़ा उपयुक्त नहीं है क्योंकि यह बहुत ही महीन (बारीक) होता है । इसलिए ज्यादा गर्म करने पर काफी मात्रा में यह भट्टी से उड़ जाता है । इस वजह से कांच बनाने के लिए भारी सोड़ा-एश का इस्तेमाल किया जाता है ।

रेत के कण भी न तो बहुत हल्के होने चाहिए न बहुत भारी । हल्के होने पर वे भट्टी से उड़ जाते हैं और भारी होने पर आसानी से पिघलते नहीं । कांच बनाने के लिए उपयुक्त चूना मध्य प्रदेश में सतना और कटनी के पास पाया जाता है ।

इन तीनों पदार्थों के अलावा अशुद्धियों को दूर करने के लिए, बुलबुलों

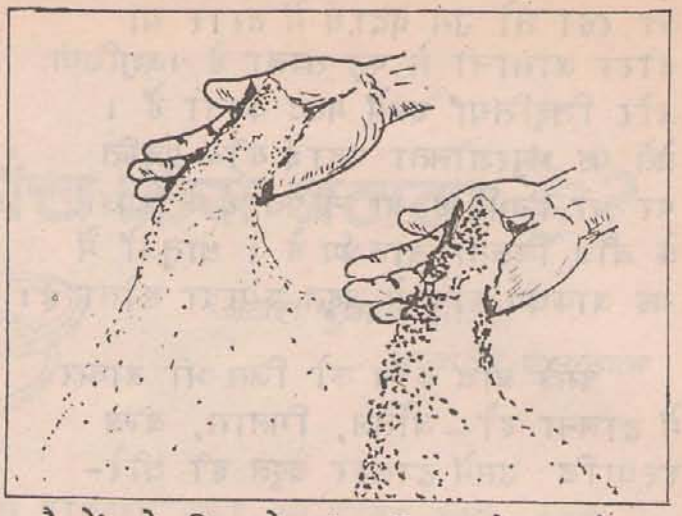

गैसों के निकलने की प्रक्रिया तेज करने के लिए, पिघले हुए कांच को ज्यादा तरल बनाने के लिए या फिर कांच को कोई विशेष रंग देने के लिए- अन्य पदार्थ भी मिलाये जाते हैं । विभिन्न रंगों के लिए ये पदार्थ मिलाए जाते हैं–

गहरे नीले-हरे रंग के लिए	- ताँबा
हरे-भूरे रंग के लिए	- लोहा
लाल रंग के लिए	- सोना

कांच बनाने में काम आने वाले पदार्थ में लोहे का आक्साइड अशुद्धि के रूप में होने से कांच में हल्का हरा रंग आ जाता है ।

सफेद/रंगहीन, पारदर्शक कांच बनाने के लिए कम से कम अशुद्धि वाले पदार्थों का इस्तेमाल करना जरूरी है । खासकर लैन्स, प्रिज्म आदि के लिए अशुद्धि-रहित कांच बहुत ही जरूरी है ।

अब आते हैं कांच की मजबूती पर। प्रयोगशाला में पाये जाने वाले कॉर्निंग के बीकर, फ्लास्क और उफन-नलियां तो काफी मजबूत होती हैं । ये सब ऐसे कांच से बने होते हैं जो गर्म किए जाने पर

बहुत ज्यादा नहीं फैलता और काफी ऊंचे तापमान पर पिघलता है । इसलिए यह गर्म करने पर आसानी से नहीं टूटता । इस तरह का कांच बनाने के लिए 82% रेत, 5% सोड़ा और शेष 13% बोरिक आक्साइड का उपयोग किया जाता है । यह कांच 1650°C पर पिघलता है । इस पर पानी और तेजाब का भी खास प्रभाव नहीं पड़ता ।

कांच को अधिक मजबूत बनाने के लिए और तीखे टुकड़ों में टूटने से बचाने के लिए प्लास्टिक का उपयोग किया जाता है । कांच की दो पर्तों के बीच में एक प्लास्टिक की पतली पर्त रखकर अच्छी तरह से चिपका दी जाती है । बुलेट-प्रूफ कांच में मजबूती और भी बढ़ाने के लिए कांच की चार पर्तों के बीच में प्लास्टिक की तीन पर्तें सैंडविच की जाती हैं- (पर्त-दर-पर्त जमायी जाती हैं) कांच, प्लास्टिक, कांच, प्लास्टिक कांच, प्लास्टिक और फिर कांच ।

अगर ऐसे कांच से कोई भारी चीज तेजी से टकराती है तो पहले सबसे बाहर का कांच टूटता है परन्तु कांच बिखरता नहीं क्योंकि वह प्लास्टिक की सतह से चिपका हुआ है। बाहरी कांच की पर्त तोड़ने पर टकराई वस्तु की ज्यादातर शक्ति खत्म हो जाती है । अगर वस्तु बहुत ही तेजी से आये तो दूसरा कांच भी टूट जायेगा परन्तु वह भी बिखरेगा नहीं क्योंकि प्लास्टिक की दो सतहों से चिपका हुआ है ।

इस तरीके से कांच की चार पर्तों को जो प्लास्टिक की तीन पर्तों से बंधी/जुड़ी हुई हों, तोड़ना काफी मुश्किल

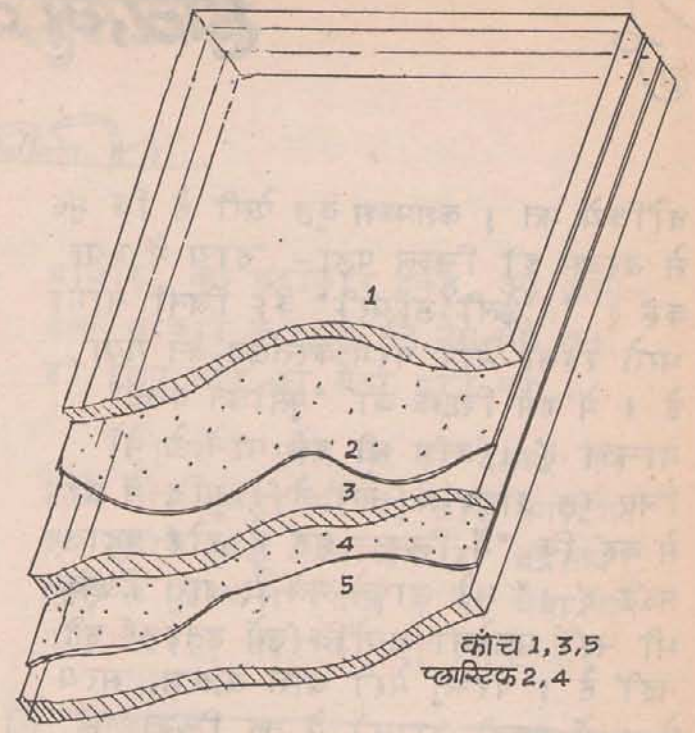

होता है । इस तरह के कांच का उपयोग सुरक्षा के कामों में भी होता है । ऐसे कांच को भेदना बन्दूक की गोली के लिए मुश्किल होता है । ऐसे कांच का विशेष प्रकार की मोटरों, हवाई जहाज, राकेट इत्यादि में उपयोग किया जाता है । इस तरह का कांच बुलेट-प्रूफ कांच कहलाता है ।

आजकल ऐसा कांच भी विकसित करने की कोशिश की जा रही है जिसमें कागज जितनी मोटी कांच की 30-40 पर्तें होंगी और उनके बीच प्लास्टिक की पतली पर्तें । पाया गया है कि इससे कांच की मजबूती और बढ़ जाती है ।

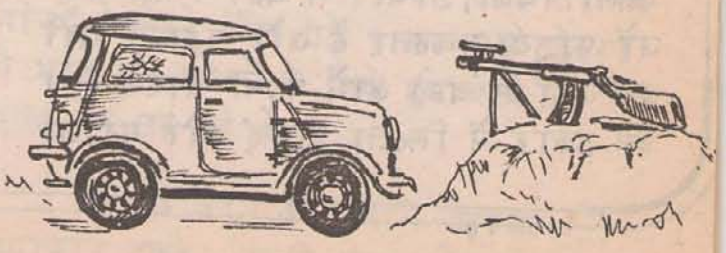

हाय, मैं क्या करूँ ?

चौंकिये मत । कशमकश कुछ ऐसी है कि मुंह से बरबस ही निकल पड़ा- "हाय मैं क्या करूँ । " "डेली डायरी" को बिना नागा भरते रहना मेरा परम कर्त्तव्य बन गया है । मैं इसे शिक्षक का "मुसीबत कवच" मानता हूं । आप भी इसे मानें ये मेरे लिए कुछ आवश्यक नहीं है । यदि मैं आप से कहूं कि "मैं लिखता झूठ हूं और पढ़ाता सही हूं ।" तो आपके गले ये बात बिलकुल भी नहीं उतरेगी क्योंकि उसे उतरना ही नहीं है । परन्तु मेरी बात अक्षरश: सत्य है । मैं अपनी डायरी में वह लिखता हूं जो बच्चे पढ़ना चाहते हैं । हिसाब से तो मुझे वही पढ़ाना चाहिए जो पाठ्यक्रम कहता है । परन्तु जो बच्चे पढ़ना चाहते हैं उसका क्या करूँ ? अत: कुछ न कुछ तो रास्ता निकालना ही था ।

कुछ अवलोकनों का निश्चय कर, कुछ अनुमानित आंकड़ों की तुलनात्मक कल्पना से, एक दिशा निश्चित करने का प्रयास किया । पाठ्यक्रम का बंधन तोड़ने में मुझे कुछ कम भय लगा परन्तु बच्चों को पीछे खींचना या छलांग लगवा देने की तो हिम्मत ही नहीं पड़ी । तब मैंने फैसला किया, डायरी में वही लिखा करूँ जो पाठ्यक्रम कहता है और पढ़ाया वही करूँ जहां से बच्चे आगे पढ़ना चाहते हैं । इस प्रकार में लिखता झूठ हूं और पढ़ाता सच हूं । कभी-कभी लिखना और पढ़ाना बी·टी·आई के दो साथियों की तरह मिल भी जाते हैं अन्यथा आगे पीछे तो रहना ही है ।

इन सब बातों का मतलब ये नहीं है कि मैं कछुआ चाल को नियति मानता हूं परन्तु इसका यह अर्थ भी नहीं है कि मैं हिरनी जैसे कुलांचों का समर्थन करता हूं । कभी-कभी मेरा चुना हुआ रास्ता मुझे डरा भी देता है । आत्मा भी कभी-कभी कचोटें देती है । यदि डायरी, पाठ्यक्रम और कक्षा की पढ़ाई तीनों का मिलान कर लिया गया तो क्या होगा ? पाठ्यक्रम और पढ़ाई के अन्तर के कारण कई अतिरिक्त कार्य हैं परन्तु इन्हें कौन मानेगा?

दूसरी ओर "नयी शिक्षा नीति" के अंतर्गत सीखी गई "बाल केन्द्रित" शिक्षा का श्रीगणेश शिक्षक नहीं करेंगे तो कौन करेगा ? परन्तु ये सब "रिस्की" तो है ही, तब कशमकश के आवेगों और तर्क-वितर्क के मंथन की घोर नादों के बीच निकल पड़ते हैं ये शब्द - "हाय मैं क्या करूँ ?"

नागेश गुरु "निर्मोही"
ताकू

वह
एक दृश्य था
जो
मेरे ध्यान में
उभरा था
अपने आसपास से ही

वह एक दृश्य था
जिसमें
खूब सारे लोग थे
जो
खुद नहीं खड़े थे
किसी
ऊँची जगह पर
बल्कि
उनके इतने सारे
होने से
उन सबका
एक साथ
खड़े होना
अहसास करा रहा था

एक पहाड़ होने का
मैंने सोचा
पहाड़ और
पहाड़ की ऊँचाई
की बात करने वाले
एकदम से
कितने बौने हो जाएंगे
इन
खूब सारे
लोगों को देखकर

कभी-कभी
मुझे लगता है
मैं भी
अपने
आसपास के
सभी लोगों से
"लोगों के पहाड़ होने"
की बात करूं

रमन

:: आइये वन संरक्षण व्रत लें ! ::

मध्य प्रदेश के वन आर्थिक-सामाजिक विकास की कुन्जी हैं ।

इन वनों से -

- कोई तीन अरब रूपए का राजस्व मिलता है .
- आठ करोड़ मानव-दिवस का रोजगार मिलता है .
- एक अरब रूपए की निस्तार - सुविधाएं दी जाती हैं.
- एक अरब रूपया मजदूरी और वनोपज - खरीदी के रूप में वितरित होता है .
- 11 राष्ट्रीय उद्यानों और 31 अभ्यारण्यों के माध्यम से वन्य प्राणियों का संरक्षण किया जा रहा है .
- कोई तीन दर्जन उद्योग वनों पर आधारित हैं .
- वन, भूमि और जल का संरक्षण करते हैं .

आइये,

नये सिरे से वन - संरक्षण का व्रत लें ।

स0प्र0सं0/विज्ञापन/ 8800197/87

हरियाली से ही खुशहाली - वृक्षों की रक्षा कीजिए ।

डाक पंजीयन क्रमांक J-2/M.P./33/22 दिनांक 5.12.86 HSD

एकलव्य, ई-1/208, अरैरा कालोनी, भोपाल द्वारा प्रकाशित
एवं भंडारी ऑफसेट प्रिंटर्स भोपाल द्वारा मुद्रित
संपादन एवं वितरण: एकलव्य, कोठी बाजार, होशंगाबाद 461001